नीतिसावित्री

रचयिता

श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्य

स्वामी निश्चलानन्दसरस्वती

नीतिसावित्री

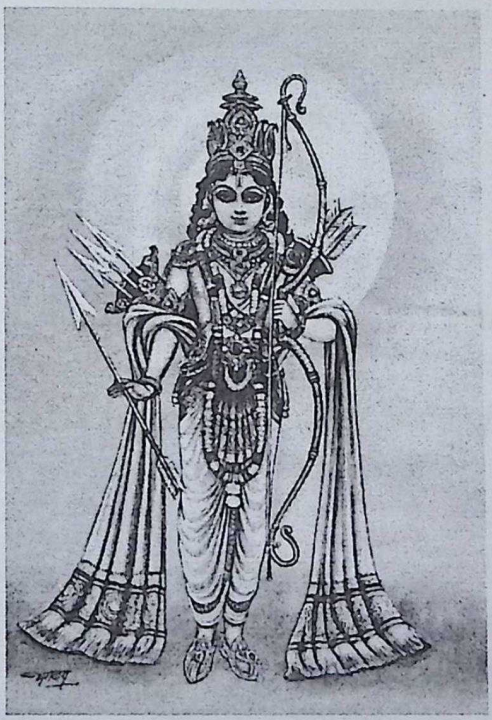

रचयिता

श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्य

स्वामी निश्चलानन्दसरस्वती

नीतिसावित्री

प्रकाशनप्रशस्ति

''स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान''–श्रीगोवर्द्धनमठ–पुरीपीठ – पुरीका

११९ वाँ पुष्प

नीतिसावित्री

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण वि. स. २०७२, सन् २०१५

१००० प्रति

द्वितीय संस्करण वि. स. २०७३, सन् २०१७

२००० प्रति

सहयोगराशि

६०. ०० (साठ रुपये)

स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान

श्रीमज्जगद्गुरु – शङ्कराचार्य – गोवर्द्धनमठ – पुरीपीठ

पुरी १ (ओडिशा), ७५२००१.भारत

श्रीहरिः

श्रीगणेशाय नमः

दिग्दर्शन

प्रिय पाठकवृन्द, सस्नेह स्मरण तथा अभिनन्दन।

श्रीगोवर्द्धनमठ – पुरीपीठाधीश्वर अनन्तश्री विभूषित जगद्गुरु – शङ्कराचार्य स्वामी निश्चलानन्दसरस्वती – महाभाग – विरचित **'नीतिसावित्री'** नामक यह लघु प्रबन्ध श्रीगोवर्द्धनमठ – पुरीपीठसे प्रकाशित ११९ वाँ पुष्प है। इसमें नीतिसम्बन्धी कुल एक सौ आठ श्लोक सनातन नीतिशास्त्रोंसे सङ्कलितकर पूज्यपादने उनका मनोरम अर्थ किया है तथा अपेक्षित स्थलपर मार्मिक विवरण भी सन्निहित किया है। इसमें **'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, अतिथिदेवो भव' (तैत्तिरीयोपनिषत् १)** के अनुरूप माता, पिता, आचार्य और अतिथिके प्रति ; तद्वत् राष्ट्रके प्रति आस्थान्वित करनेवाले वचनोंको सन्निहित किया गया है। इसमें सनातनसंस्कृतिके अनुरूप शिक्षा, रक्षा, न्याय, सेवा, संस्कार और

जीविकासे समन्वित यज्ञमय, योगमय और सुखमय जीवनकी संरचनापर प्रकाश डाला गया है। इसमें नास्तिकतारहित तथा महगाई – विनिर्मुक्त विशुद्ध पर्यावरणसहित और गोवंश – गङ्गादि सर्वहितप्रद प्रशस्त सनातन मानबिन्दुसम्पन्न, विकासको विकास सिद्ध किया गया है। इसमें विकासके नामपर गोवंशादि मानबिन्दुओंको विकृत, दूषित, कुपित और विलुप्त करनेके दुर्व्यसनको घातक सिद्ध किया गया है। इसमें धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षको परिभाषितकर मानवजीवनकी सार्थकताका मार्ग प्रशस्त किया गया है।

अर्थ और कामतक सीमित नीति तथा अध्यात्मविहीन शिक्षापद्धतिके फलस्वरूप सनातन – वैदिक – आर्य – हिन्दुओंका सुशीलता, शूरता, ओजस्विता और अमोघदर्शितावि‌हीन जीवन विश्वके अपकर्षका साधक तथा स्वयं उनके लिये घातक सिद्ध है।

नीति, प्रीति, स्वार्थ तथा परमार्थमें सामञ्जस्यविहीन केवल स्वार्थपरायण नरजीवन सर्वहितका अवरोधक और अभिशाप है।

श्रद्धा तथा तत्परतापूर्वक इस ग्रन्थके अध्ययन और अनुशीलनसे नीति तथा अध्यात्मसमन्वित सर्वसुखकर जीवन तथा जगत् की संरचना सुनिश्चित है।

मानवोचित शील , संयम और दिव्यताओंसे सम्पन्न व्यक्ति, परिवार , समाज, राष्ट्र एवम् विश्वसंरचनाकी भावनासे इसका दैनिक अध्ययन नितान्त अपेक्षित है।

इस संरचनाको समुज्ज्वल जीवनकी सञ्जीवनी समझकर जीवनपर्यन्त इसके सेवनका व्रत सर्वसुमङ्गल है।

'नीतिसावित्री' का लघुसंस्करण **'नीति चालीसा'** तथा बृहत्संस्करण **'नीतिनिधि'** – **'स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान'** – श्रीगोवर्द्धनमठ – पुरीपीठसे प्रकाशित है।

भवदीय

श्रीमज्जगद्गुरु – शङ्कराचार्यके निज सचिव

स्वामी निर्विकल्पानन्दसरस्वती

प्रथम संस्करण

रथयात्रामहोत्सव–शुद्ध आषाढ़ शुक्ल द्वितीया वि.स. २०७२

(१८.७.२०१५)

द्वितीय संस्करण

महोदधि – आरती – वार्षिक महोत्सव पौषपूर्णिमा वि.स.२०७३

(१२.१.२०१७)

* श्रीहरिः *

।। श्रीगणेशाय नमः ।।

विषयानुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ
	प्रकाशनप्रशस्ति	०२
	दिग्दर्शन	०३
	विषयानुक्रमणिका	०६
१.	नीतिसावित्री	०७ – ६९
	जयघोष	७०
	प्रार्थना	७२
	अनुरोध	७३
	स्वस्तिप्रकाशन	७४– ८०

श्रीहरिः

श्रीगणेशाय नमः

नीतिसावित्री

सच्चिदानन्दरूपाय प्रत्यगात्मस्वरूपिणे।
नित्याय विभुरूपाय सर्वरूपाय ते नमः।।

"सच्चिदानन्दरूप प्रत्यगात्मस्वरूप , नित्य –विभु – सर्वरूप अर्थात् कालकृत – देशकृत – वस्तुकृत – परिच्छेदशून्य अनन्तस्वरूप आपको नमस्कार।।"

श्यामल नीरज नीलघन नटवर,
यदुकुलभूषण कृष्ण हरे।।
अद्भुत सुन्दर नीलमणि गिरिधर ,
शशिकुलभूषण चन्द्र हरे।।
पावक पोषक सोमरवि हरिहर,
सकल सुमङ्गल देव हरे।।

तारक पारक शोकहर दिनकर,
सकल सुखप्रद नाथ हरे ।।
धारक हारक जन्मकर जयकर,
अखिल अमङ्गल नाशक हे।।
लायक नायक पापहर मधुकर,
निखिल रसामृत मोहक हे।।
स्थावर -जङ्गम -जीवनिधि रसकर,
सकल अमङ्गल वारक हे।।
हे जगदीश्वर तापहर हिमकर,
सकल सुमङ्गल दायक हे।।

नील कमल तथा नीलमेघके सदृश यदुकुलभूषण नटवर हे हरि श्रीकृष्ण ! नीलमणिके सदृश आप अद्भुत सुन्दर हैं। शशिकुलभूषण चन्द्रस्वरूप हे हरि ! आप गिरिधर हैं। हे हरि! आप अग्नि, चन्द्र और सूर्यके भी पोषक हरि और हर उभयरूप सकल सुमङ्गलप्रद देवस्वरूप हैं। हे हरि , हे नाथ! आप भवसिन्धुसे तारनेवाले , प्रेमाभक्ति प्रदान करनेवाले, शोकहरने वाले , शुभ करनेवाले तथा सकल सुखप्रद हैं। हे अखिल अमङ्गल नाशक ! आप जगत् के उत्पादक, पालक, संहारक और जयकारक हैं। हे निखिल रसामृत रसवर्षक सब लायक तथा मोहक! आप सब पापोंका हरण करनेवाले हैं। हे स्थावर तथा जङ्गम प्राणियोंके जीवनधन ! आप सकल अमङ्गलके नाशक तथा आनन्दप्रद

हैं। हे जगदीश्वर , हे सकल सुमङ्गलदायक ! आप त्रिविध तापोंके अपनोदक और आह्लादक अद्भुत चन्द्र हैं।।

०१.

दमः क्षमा धृतिस्तेजः सन्तोषः सत्यवादिता।
ह्रीरहिंसाऽव्यसनिता दाक्ष्यं चेति सुखावहाः।।
(महाभारत - शान्तिपर्व २९०.२०)

''इन्द्रियसंयम, क्षमा, धैर्य, तेज, सन्तोष, सत्यवादिता, लज्जा, अहिंसा, दुर्व्यसनका त्याग तथा दक्षता - ये सब सुखप्रद हैं ।।''

०२.

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः।।
(महाभारत - शान्तिपर्व १६२.२१)

''मन, वाणी और कर्मद्वारा सर्वप्राणियोंके साथ कभी द्रोह न करना अर्थात् मनोनिग्रह और इन्द्रियसंयमसे सम्पन्न रहना तथा दया और दान यह श्रेष्ठ पुरुषोंका सनातन धर्म है।।'

०३.

धर्मे मतिर्भवतु वः सततोत्थितानां
स ह्येक एव परलोकगतस्य बन्धुः।

अर्थाः स्त्रियश्च निपुणैरपि सेव्यमाना
नैवाप्तभावमुपयान्ति न च स्थिरत्वम्।।
(महाभारत - आदिपर्व २.३९१)

"आपलोग सदा सांसारिक आसक्तिओंसे ऊँचे उठें और आपका मन सदा धर्ममें लगा रहे, क्योंकि परलोकमें गये हुए जीवका बन्धु या सहायक एकमात्र धर्म ही है । निपुण (दक्ष, चतुर) मनुष्य भी अर्थ और कामका सेवन तो करते हैं, किन्तु वे उनकी श्रेष्ठतापर विश्वास नहीं करते और न उन्हें स्थिर ही मानते हैं ।।"

०४.

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः।।
(महाभारत - स्वर्गारोहणपर्व ५.६३)

"कामनासे, भयसे, लोभसे अथवा प्राण बचानेके लिए भी धर्मका त्याग न करे । निष्कामभावसे अनुष्ठित यज्ञादिरूप और आत्मज्ञानरूप धर्मका फल मोक्ष नित्य होनेके कारण धर्म नित्य है और सुख - दुःख अनित्य हैं। इसी प्रकार जीवात्मा नित्य है और उसके बन्धनके अविद्या -काम-कर्मरूप हेतु अनित्य है।।"

०५.

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्।।
(मनुस्मृति ८.१५)

"अतिक्रमण (उल्लङ्घन) किया हुआ धर्म ही व्यक्तियोंको नष्ट कर देता है और धर्मपालनसे रक्षित धर्म ही व्यक्तियोंको सुरक्षित रखता है । अतः 'नष्ट हुआ अर्थात् उपेक्षित और अधर्माचरणसे तिरस्कृत धर्म हमें नष्ट न करे' इस भावनासे धर्मका हनन (त्याग) न करे।।"

०६.

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः ।
सुखं च न विना धर्मात् तस्माद्धर्मपरो भवेत्।।
(अष्टाङ्गहृदयसूत्र २.२०)

"सब प्राणियोंकी सब प्रवृत्तियाँ सुखके लिये होती हैं । सुख बिना धर्मके नहीं होता, अतः धर्मपरायण होना चाहिये ।।"

केवल धन, मान तथा विषयोपभोगके लिए ही विद्या और कलाका उपयोग करनेवाले व्यक्ति तथा संस्थान धर्मके अवरोधक और धर्मद्रोही मान्य हैं–

०७.

आजिजीविषवो विद्यां यशःकामौ समन्ततः।
ते सर्वे नृप पापिष्ठा धर्मस्य परिपन्थिनः।।
(महाभारत - शान्तिपर्व १४२.१२)

"राजन्! जो अपनी विद्या - शिक्षा - कलाका उपयोग और विनियोग केवल यश और कामके लिये ही करते हैं, वे सब मूर्धन्य पापी हैं , धर्मके अवरोधक हैं।।"

०८.

अर्थसिद्धिं परामिच्छन् धर्ममेवादितश्चरेत्।
न हि धर्मादपैत्यर्थः स्वर्गलोकादिवामृतम्।।
(महाभारत - उद्योगपर्व ३७. ४८)

"जो अर्थकी पूर्ण सिद्धि चाहता हो, उसे आरम्भसे धर्मका ही आचरण करना चाहिए। जैसे स्वर्गसे अमृत दूर नहीं होता; वैसे ही धर्मसे अर्थ अलग नहीं होता।।"

०९.

अपध्यानमलो धर्मो मलोऽर्थस्य निगूहनम्।
सम्प्रमोदमलः कामो भूयः स्वगुणवर्जितः।।
(महाभारत - शान्तिपर्व १२३.१०)

"अर्थ, धर्म और कामको वास्तव पुरुषार्थका रूप प्रदान करनेके लिये तीनोंके मलका शोधन आवश्यक है। फलेच्छा धर्मका

मल है, सङ्ग्रह अर्थका मल है, आमोद और प्रमोद कामका मल है।।''

१०.

त्रिवर्गे त्रिविधा पीडानुबन्धास्त्रय एव च।
अनुबन्धाः शुभा ज्ञेया : पीडाश्च परिवर्जयेत्।।
(महाभारत - शान्तिपर्व १४०.५७)

''धर्मानुष्ठानमें लोभ, अर्थोपार्जनमें अनभिज्ञता और काममें शक्तिहीनता विघ्नकारक है। धर्मसे शान्ति, अर्थसे सर्वहितप्रद कर्म तथा विषयोपभोगरूप कामसे श्रेयस्कर जीवनकी समुपलब्धि होनेपर इनकी सार्थकता है।।''

११.

धर्मात्सञ्जायते ह्यर्थो धर्मात्कामोऽभिजायते।
धर्म एवापवर्गाय तस्माद्धर्मं समाश्रयेत्।।
(कूर्मपुराणपूर्व. २.४५)

''धर्मसे अर्थ सुलभ होता है, धर्मसे काम समुत्पन्न होता है, धर्म स्वयं धर्म है ही ; अपवर्गरूप मोक्षका अभिव्यञ्जक भी धर्म ही है; अतः धर्मका समाश्रय प्राप्त करे।।''

१२ .

अत्राहारार्थं कर्मकुर्यादनिन्द्यं
कुर्यादाहारं प्राणसंधारणार्थम्।

प्राणाः संधार्यास्तत्त्वजिज्ञासनार्थं
तत्त्वं जिज्ञास्यं येन भूयो न दुःखम् ।।
(योगवासिष्ठ - निर्वाणप्रकरण - उत्तरार्द्ध २१.१०)

''जीवनमें आहारादिरूप अर्थकी सिद्धिके लिये अनिन्द्य कर्मरूप धर्मका सम्पादन कर्त्तव्य है। आहारादिसेवनरूप विषयोपभोगसंज्ञक काम विषयलोलुपताके लिये नहीं, अपितु प्राणरक्षार्थ विहित है । प्राणसंधारण भगवत्तत्त्वकी जिज्ञासाके लिये उचित है। तत्त्वजिज्ञासा तत्त्वबोध प्राप्तकर दुःखोंके आत्यन्तिक उच्छेदरूप मोक्षकी भावनासे विहित है।।''

१३.

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः।।
(श्रीमद्भागवत १.२.९)

''धर्मका वास्तव फल मोक्ष है । धर्मानुष्ठानसे सुलभ अर्थके द्वारा धर्मानुष्ठान और तत्त्वचिन्तनके अनुरूप जीवनकी समुपलब्धि विहित है । अर्थका विनियोग विषयलम्पटताकी परिपुष्टिमें निषिद्ध है ।।''

अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष – पुरुषार्थचतुष्टय हैं । भोग्यसामग्रीका नाम **अर्थ** है । भोग्य–सामग्रीके उपभोगका नाम **काम** है । अर्थोपार्जन और विषयोपभोगकी अभ्युदय और निः श्रेयस – संज्ञक मोक्षके अविरुद्ध और अनुकूल विधाका नाम **धर्म** है । लौकिक –पारलौकिक उत्कर्ष और निः श्रेयससंज्ञक मोक्षके अनुरूप बल तथा वेगका समुदय अभ्युदय है। मृत्यु, अज्ञान और दुःखकी आत्यन्तिकी निवृत्ति और सच्चिदानन्दरूपताकी सिद्धि मुक्ति या **मोक्ष** है ।

अर्थ और काम वृक्षादि स्थावर (अचर) और पशु, पक्षी, पिपीलिका, कृमि – कीट तथा मनुष्यादि जङ्गम (चर) संज्ञक सर्व प्राणी – सुलभ पुरुषार्थ हैं। अभिप्राय यह है कि **आहार** – संज्ञक अर्थ और **आह्लाद** – संज्ञक कामके बिना जीवननिर्वाह असम्भव है। धर्म जीवनका **आधार** है। किसी भी वस्तुका अस्तित्व और उसकी उपयोगिता धर्मपर ही निर्भर है। कारण यह है कि धर्म धारक है। उदाहरणार्थ गन्ध नामक गुणधर्मविहीन पृथ्वीकी सत्ता तथा उपयोगिता सर्वथा असम्भव है। मृत्यु, जडता तथा दुःखके अपहारक सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माके अनुरूप मनोभावका अभिव्यञ्जक तथा देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणका शोधक वेदादि शास्त्रसम्मत यज्ञ, दान, तप तथा व्रतादि संज्ञक आचार और शम दम , समत्व, असङ्गत्वादि समन्वित विचार धर्म है।

सकल अनर्थोंका आत्यन्तिक उच्छेदरूप **उद्धार** मोक्ष है। मोक्ष जिस अध्यात्मविज्ञानसे सम्भव है, उसकी समुपलब्धि भी वेदादि शास्त्रोंपर ही निर्भर है।

१४

कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः।।
(श्रीमद्भागवत १.२.१०)

"विषयोपभोगरूप कामकी सार्थकता स्वस्थ तथा प्रिय, मोद, प्रमोदकर सुखद जीवनकी समुपलब्धिमें सन्निहित है, न कि इन्द्रियप्रीतिमें। अभीष्ट विषयकी समुपलब्धिसे सुलभ आह्लाद **प्रिय** है। उसके सेवनसे सुलभ उन्नत आह्लाद **मोद** है। उसके यथेच्छ उपभोगसे सुलभ अतिशय आह्लाद **प्रमोद** है। इन्द्रियप्रीतिरूपा निर्मलताकी सार्थकता इन्द्रियसमुदायरूप करणग्रामसे स्वयंको विविक्त और इनका प्रयोक्ता जीवरूप समझनेमें है। ऐसे जीवकी सार्थकता भी जीवनधन अद्वय विज्ञानघन ब्रह्मसंज्ञक परमात्मस्वरूप भगवत्तत्त्वकी जिज्ञासामें सन्निहित है, न कि कर्मानुष्ठानके द्वारा लौकिक अर्थ तथा कामकी समुपलब्धिमें और देहपातके पश्चात् स्वर्गादि लोकोंमें उत्क्रमण और पुनर्भवकी प्राप्तिमें।।"

१५.

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।।
(श्रीमद्भागवत १.२.११)

"तत्त्ववेत्ता उसे **तत्त्व** कहते हैं, जो आश्रयरूप ज्ञाता तथा विषयरूप ज्ञेयसहित मध्यवर्ती ज्ञानसे अतीत अद्वय ज्ञानस्वरूप है। जो लक्षणसाम्यसे वस्तुसाम्यकी दृष्टिसे विवक्षावशात् ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् कहा जाता है।।"

१६.

कर्मणा जायते भक्तिर्भक्त्या ज्ञानं प्रजायते।
ज्ञानात्प्रजायते मुक्तिरिति शास्त्रेषु निश्चयः।।
(शिवपुराण - उमा. ५१.१०)

"निष्कामभावसे समनुष्ठित स्वकर्मसंज्ञक धर्मानुष्ठानके अमोघ प्रभावसे भगवद्भक्ति सुलभ होती है। भक्तिसे तत्त्वज्ञान समुत्पन्न होता है। तत्त्वज्ञानसे कैवल्य मोक्ष निष्पन्न होता है। यह शास्त्रोंमें सुनिश्चित तथ्य है।।"

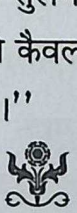

इस संक्रमण, सम्मिश्रण और संघर्षके युगमें सर्वदेश, सर्वकाल तथा सर्वपरिस्थितिमें सर्वहितप्रद सनातन संविधानके प्रति सहिष्णुता उद्दीप्त करने तथा तदनुरूप शासनतन्त्रको विकसित करनेकी आवश्यकता है। विश्वको यह बतानेकी आवश्यकता है कि सर्व शरीरोंकी पाञ्च भौतिकता तथा आत्माकी सदृशता होनेपर भी वर्णाश्रमानुरूप अधिकारभेद चिकित्सागत प्रभेदके तुल्य स्वस्थ जीवन और समाजकी संरचनामें प्रयुक्त तथा विनियुक्त होने योग्य है। अभिप्राय यह है कि सर्व शरीरोंकी पाञ्च भौतिकता तथा आत्माकी सदृशता होनेपर भी सनातन शास्त्रसम्मत वर्णाश्रमानुरूप अधिकारभेदके अनुपालनसे समस्त भेदभूमियोंका सदुपयोग तथा निर्भेद आत्मस्थितिकी समुपलब्धि सुनिश्चित है–

१७ -१८.

विशेषेण च वक्ष्यामि चातुर्वर्ण्यस्य लिङ्गतः।
पञ्चभूतशरीराणां सर्वेषां सदृशात्मनाम् ।।
लोकधर्मे च धर्मे च विशेषकरणं कृतम् ।
यथैकत्वं पुनर्यान्ति प्राणिनस्तत्र विस्तरः ।।
(महाभारत- अनुशासनपर्व १६४.११,१२)

"यद्यपि सबके शरीर पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश संज्ञक पञ्चभूतोंके तारतम्यज सङ्घात होनेके कारण पाञ्च भौतिक

हैं और सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा भी सर्वप्राणियोंमें सदृश ही है; तथापि समस्त भेदभूमियोंका सदुपयोग करता हुआ अनात्मवस्तुओंसे विविक्त और सर्वाधिष्ठानभूत आत्मामें व्यक्ति मन समाहित कर सके, तदर्थ बल और वेगका समुचित आधान वेदादि शास्त्रसम्मत वर्णाश्रमोचित भेदको स्वीकार किये बिना सर्वथा असम्भव है। इस तथ्यका वैदिक वाङ्मयमें विस्तारपूर्वक वर्णन है।।''

ध्यान रहे; तत्त्वदर्शी महर्षियों और मुनियों द्वारा दृष्ट और प्रयुक्त कृषि, अग्निहोत्रादि लौकिक तथा पारलौकिक उत्कर्षके साधनोंको परिष्कृत और क्रियान्वित करनेमें हम अवश्य ही अधिकृत हैं; परन्तु शिक्षा, रक्षा, कृषि, भवन, वाणिज्य, सेवा, यज्ञ, दान, तप, व्रत तथा देवार्चनादिसे सम्बद्ध सनातन विज्ञानका परित्याग कर नवीन उद्भावना और प्रयोगका आलम्बन लेने पर विकासके स्थानपर विनाशका पथ ही प्रशस्त कर सकते हैं । उन प्राचीन वैदिक महर्षियोंके द्वारा चिरपरीक्षित और प्रयुक्त उपायोंका इस समय भी जो श्रद्धापूर्वक भलीभाँति आचरण करता है, वह सुगमतासे अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है । परन्तु जो अज्ञ उनका अनादर करके अपने मनःकल्पित उपायोंका आश्रय लेता है, उसके सब

उपाय और प्रयत्न पुनः-पुनः निष्फल होते हैं। अत एव सनातन वैदिक आर्यपरम्पराप्राप्त कृषि, जलसंसाधन, भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, उत्सव - त्योहार, रक्षा, सेवा, न्याय और विवाहादिका देश, काल, परिस्थितिके अनुरूप बोध और क्रियान्वयनका प्रक्रम ही सर्वहितप्रद और सुखप्रद है।

कालगर्भित और कालातीत सर्व वस्तुओंके ज्ञापक वेद हैं। वेदसम्मत कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्डको न माननेपर सम्भावित विश्व नरक तथा नारकीय प्राणियोंका समुदाय ही शेष रहेगा। ब्रह्माण्डमें जो कुछ वस्तुगत तथा व्यक्तिगत दिव्यता है, वह लौकिक तथा पारलौकिक उत्कर्षके ख्यापक वेदसम्मत कर्मोपासनाके कारण ही है। जन्ममृत्युकी अजस्रपरम्पराका आत्यन्तिक उच्छेद संज्ञक कैवल्यकी सिद्धिका वेदान्तविज्ञानके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। इस सन्दर्भमें आदि राजा पृथुके प्रति गोरूपा भूदेवी (पृथ्वी) का यह सन्देश अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है-

१९ -२१.

अस्मिँल्लोकेऽथवामुस्मिन्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
दृष्टा योगाः प्रयुक्ताश्च पुंसां श्रेयः प्रसिद्धये ।।
तानातिष्ठति यः सम्यगुपायान् पूर्वदर्शितान्।
अवरः श्रद्धयोपेत उपेयान् विन्दतेऽञ्जसा।।

ताननादृत्य योऽविद्वानर्थानारभते स्वयम्।
तस्य व्यभिचरन्त्यर्था आरब्धाश्च पुनः पुनः।।
(श्रीमद्भागवत ४.१८.३-५)

"तत्त्वदर्शी महर्षियों और मुनियोंके द्वारा दृष्ट और प्रयुक्त कृषि, अग्निहोत्रादि लौकिक तथा पारलौकिक उत्कर्षके साधनोंको परिष्कृत और क्रियान्वित करनेमें हम अवश्य ही अधिकृत हैं; परन्तु कृषि, भवन, वाणिज्य, यज्ञ, दान, तप, देवार्चनादिसे सम्बद्ध सनातन विज्ञानका परित्याग कर नवीन उद्भावना और प्रयोगका आलम्बन लेने पर विकासके स्थानपर विनाशका पथ ही प्रशस्त कर सकते हैं। उन प्राचीन वैदिक महर्षियोंके बताये हुए उपायोंका इस समय भी जो श्रद्धापूर्वक भलीभाँति आचरण करता है, वह सुगमतासे अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है। परन्तु जो अज्ञानी उनका अनादर करके अपने मनःकल्पित उपायोंका आश्रय लेता है, उसके सब उपाय और प्रयत्न पुनः-पुनः निष्फल होते हैं। अत एव सनातन वैदिक आर्यपरम्पराप्राप्त कृषि, जलसंसाधन, भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, उत्सव - त्योहार, रक्षा, सेवा, न्याय, विवाह, देवसंस्थानादिका देश, काल, परिस्थितिके अनुरूप बोध और क्रियान्वयनका प्रक्रम ही सर्वहितप्रद और सुखप्रद है।।"

२२.

धर्मः कामश्च कालश्च वसुर्वासुकिरेव च।
अनन्तः कपिलश्चैव सप्तैते धरणीधराः ।।

(महाभारत - अनुशासनपर्व १५०.४९)

"धर्म, काम, सर्वार्थसाधक काल, अर्थसाधक वसु और वासुकि, मोक्षाभिव्यञ्जक अनन्त और कपिल - संज्ञक आचार्य ये सात धरणी (पृथ्वी) के धारक तत्त्व हैं ।।"

२३.

यो हि कालो व्यतिक्रामेत् पुरुषं कालकाङ्क्षिणम्।
दुर्लभः स पुनस्तेन कालः कर्मचिकीर्षुणा।।

(महाभारत - शान्तिपर्व १०३.२१)

"समयकी प्रतीक्षा करनेवाले पुरुषके लिए जो युक्त अवसर आकर भी चला जाता है, वह अभीष्ट कार्य करनेकी इच्छावाले उस पुरुषके लिए फिर दुर्लभ हो जाता है।।"

जिस कार्यकी सिद्धिके लिए जो काल प्रशस्त है, उस कालमें उस कार्यका सम्पादन अवश्य करे। कालपारखी कालज्ञ प्रमाद और आलस्यके वशीभूत होकर समयका सदुपयोग करनेमें न चूके। समय खिसकनेपर पछतानेसे कुछ हाथ नहीं लगता। कार्यसिद्धिके लिए अपेक्षित योग पुनः कब सधेगा, यह कहा नहीं जा सकता।

यह ध्यान रखना भी अत्यावश्यक है कि जिस समय जो कार्य नहीं करना चाहिए, उस समय उसे करनेपर विस्फोट सुनिश्चित है। उदाहरणार्थ प्रदोषकालमें पतिव्रता दिति द्वारा पतिदेव कश्यपको संस्पर्शके लिए बाध्य करनेके फलस्वरूप विश्वविघातक हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्षका प्रादुर्भाव हुआ।

इस यान्त्रिक युगमें प्रतिभा तथा प्रगतिके नाम पर धर्म और मोक्षप्रद ईश्वरको विकासका परिपन्थी माना जाता है । अत एव धर्म और मोक्ष नामक दो पुरुषार्थोंका त्याग यान्त्रिक युगका विशेष उपहार है । मद्य, द्यूत, हिंसा आदि अनर्थप्रभव विविध आर्थिक परियोजनाओंके फलस्वरूप अर्थका पर्यवसान अनर्थमें परिलक्षित है । दरिद्रताके समस्त स्रोतोंको समृद्धिका स्रोत माननेके कारण इस महायान्त्रिकयुगमें अर्थ नामक पुरुषार्थका भी विलोप सुनिश्चित है।

परम अर्थ परमात्माकी अभिव्यक्ति इस समग्र जगत् का नाम अर्थ है। परम अर्थ सत्यकाम कमनीय कामेश्वरमें मनोयोग परम अर्थ और काम है।

२४-२५.

स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्द्धा व्यसनानि च।।

एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम्।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्।।
(श्रीमद्भागवत ११. २३. १८,१९)

"चोरी, हिंसा, झूठ, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, अहङ्कार, भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्द्धा, लम्पटता, जुआ और शराब – ये पन्द्रह अनर्थ मनुष्योंमें धनके कारण ही माने गये हैं ; अत एव कल्याणकामी मनुष्यको चाहिए कि स्वार्थ एवं परमार्थके विरोधी अनर्थनामधारी अर्थको दूरसे ही त्याग दे। अभिप्राय यह है कि अर्थको पुरुषार्थ सिद्ध करनेकी भावनासे इन पन्द्रह अनर्थोंके चपेटसे अर्थको मुक्त रक्खे।।"

उक्त भावगत और कर्मगत अशुद्धिके अतिरिक्त कृषिसम्पादनार्थ वर्षाके हेतु अग्नि, वायु, सूर्य – चन्द्रादि अधिदैव, सहयोगी मनुष्य तथा पशुओंके स्थानपर भी यन्त्रोंका ही उपयोग नास्तिकता, जड़ता, बेरोजगारी , वर्गसङ्घर्ष, संयुक्त परिवारके विलोप और आर्थिक विपन्नतामें अमोघ हेतु है। भूमिमें जल तथा वायुके सन्निवेशसे उर्वरताका, तेजके योगसे उष्णताका, आकाशके योगसे छिद्रताका सन्निवेश निसर्ग सुलभ तथा अपेक्षित है। उसमें स्वानुकूल पुण्य गन्धोंका, मधुरादि रसोंका, शुक्ल – लोहित – पीत – कृष्ण तथा मिश्र रूपोंका, उष्ण – शीतादि स्पर्शोंका और प्रतिध्वनि

आदि विविध शब्दोंका सन्निवेश अपेक्षित है। भूमि, पर्वत, जल, तेज तथा वायुके लिये विघातक और आकाशके अतिशय अवरोधक उच्च भवनादि महायान्त्रिक विविध प्रकल्प अर्थके लिये और अर्थोपभोक्ता सर्व स्थावर तथा जङ्गम प्राणियोंके लिये विघातक हैं। जल, तैल, पाषाण, कोयला आदि विविध खनिज द्रव्य भूगर्भगत अर्थ हैं। महायन्त्रोंके माध्यमसे इनका अतिशयदोहन स्थावर तथा जङ्गम प्राणियोंके लिये विनाशक है। विविध वृक्ष, वनस्पति, अदरख, हलदी, ज्वार, बाजरा, मक्का, चना, मटर, मसूर, कुलथी, अरहर, मूँग, गेहूँ, धान, जौ – आदि अनाज तथा आम, अमरूद, जामुन, कटहल , केला, पपीता आदि फल ; तद्वत् कपास, चाय, काफी आदिके उत्पादनकी दृष्टिसे सब प्रकारकी भूमिकी उपयोगिता सिद्ध है। भूमिकी उर्वरताके अपहारक खाद तथा विविध वृक्षोंके प्रकल्प तथा प्रान्त और जिला आदिके विभाजनके व्याजसे पृथिवीके अवरोधक अभियान समृद्धिका विघातक है। तद्वत् भूमिकी सहिष्णुताके विरुद्ध बीजका आधान अन्नविघातक है। गाँव और वनका विलोप, महानगरोंके माध्यमसे तथा दिशाहीन शिक्षा , रक्षा, न्याय , जीविकापद्धति और सेवाप्रकल्पोंके माध्यमसे संयुक्त परिवार, कुलाचार, कुलवधू, कुलवर, कुलदेवी, कुलदेवता, कुलगुरु आदिके विलोपके फलस्वरूप मानवजीवनका उपयोग और विनियोग भोजन करने

तथा सन्तान उत्पन्न करनेतक सीमित करना इसकी वास्तविक उपयोगिताका अपहरण और विलोप है। राज्यको बाजारका सौदा बनानेकी परियोजनाएँ अर्थके अवरोधक और विघातक हैं। दरिद्रताके समग्र स्रोतोंको समृद्धिका स्रोत मानना विश्वस्तरपर आर्थिक विपन्नताका मूल है। विकासके नामपर यज्ञादिके सम्पादक और पृथ्वीके धारक नदी, पर्वत, गोवंश आदिको विकृत, दूषित तथा विलुप्त करनेके ; तद्वत् पृथ्वी, पानी, प्रकाश, पवन – ऊर्जाके इन चारों स्रोतोंको विकृत, दूषित तथा कुपित करनेके प्रकल्पोंको निरस्त करनेकी नितान्त आवश्यकता है। दूषित पर्यावरण, नास्तिकता तथा मँहगाईसे रहित विकासको वेदादि सनातन शास्त्रोंके अनुसार परिभाषित तथा क्रियान्वित करनेकी आवश्यकता है। धर्मनिष्ठा और देवाराधनके विरुद्ध अश्लील मनोरञ्जन और मादक द्रव्योंकी दासता तथा असमयमें अयुक्त आहार – विहार – व्यवहार – निद्रा तथा विविध क्रियाकलापके कारण यान्त्रिक युगमें कामपुरुषार्थका विलोप भी सुनिश्चित है ।

परम अर्थ परमार्थसत्य स्रष्टा सर्वेश्वर ही वास्तव अर्थ हैं। उनकी अभिव्यक्ति यह जीवन और जगत् है। जीवन तथा जगत् का तदर्थ समग्र उपयोग अर्थ – संज्ञक पुरुषार्थ है। परमार्थसत्य प्रत्यगात्मस्वरूप परप्रेमास्पद कमनीय वरणीय प्रभु ही वास्तव काम हैं। जीवन और जगत् का तदर्थ समग्र उपभोग एवम् विनियोग कामसंज्ञक पुरुषार्थ है।

इस प्रकार जीवनको सार्थक करनेवाले धर्म – मोक्ष – अर्थ और काम नामक चारों पुरुषार्थोंसे रहित व्यक्ति तथा समाजकी संरचना यान्त्रिकयुगका घातक परिणाम है।

यज्ञके सम्पादक अत एव पृथिवीके धारक धर्म, काम, काल, वसु, वासुकि, अनन्त और कपिल – इन सातोंमें वसु और वासुकि अर्थके देवता हैं तथा अनन्त और कपिल मोक्षके आचार्य हैं । इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और काल – ये पृथिवीके धारक सिद्ध होते हैं। इनमें काल धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष संज्ञक पुरुषार्थ चतुष्टयका साधक सिद्ध है। पतिव्रता होनेपर भी असमयमें आतुरतापूर्वक पतिसमागमके फलस्वरूप दितिने हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक असुरोंको जन्म दिया। इस यान्त्रिकयुगमें दिन और रात्रिकी विभाजकरेखा विलुप्त होनेके कारण उचित समय पर उचित पुरुषार्थकी सिद्धिका प्रयत्न न होनेके कारण काल कुपित है। उक्त रीतिसे **काल कवलित और पुरुषार्थविहीन व्यक्ति तथा समाजकी संरचना यान्त्रिकयुगकी विडम्बना** है।

ध्यान रहे; जिस प्रकार **'दुइ कि होइ एक एक संग भुयाला। हँसव ठठाइ फुलाउब गाला'** (रामचरितमानस २.३५.५) कैकेई देवीके इस वचनके अनुसार ठाहाका मारके हँसना और गाल फुलाके रहना दोनों एक साथ सम्भव नहीं है ;

उसी प्रकार महायन्त्रोंका प्रचुर आविष्कार और प्रयोग तथा दिव्य व्यक्तियों तथा वस्तुओंका अस्तित्व और दर्शन दोनों एक साथ सम्भव नहीं है।

ध्यान रहे; हमारे जीवनमें अन्न और जलके विकृत, दूषित तथा कुपित सङ्घातसे श्लेष्म (कफ), तेजके विकृत, दूषित तथा कुपित सङ्घातसे पित्त तथा वायुके विकृत, दूषित तथा कुपित सङ्घातसे वात, एवम् वात , पित्त तथा कफके विकृत, दूषित तथा कुपित सङ्घातसे सन्निपात होता है। महायन्त्रोंके प्रचुर अविष्कार तथा प्रयोगसुलभ विकृत, दूषित तथा कुपित पृथ्वी, पानी, प्रकाश और पवनके सङ्घातके फलस्वरूप समष्टि सन्निपातकी सर्वसंहारकता सुनिश्चित है।

ध्यान रहे, यह भूमण्डल स्थावर – जङ्गम प्राणियोंके सहित सर्व लोकोंका पोषण करनेके कारण सर्वधारक है। यज्ञसम्पादक व्यक्ति तथा वस्तु स्थावर – जङ्गम प्राणियोंके पोषक होनेके कारण पृथ्वीके धारक हैं; अत एव धर्मरूप समझने योग्य हैं–

२६.

गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः।
अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही ।।

(स्कन्दपुराण - काशीखण्ड २.९०;
माहेश्वर - कुमारिकाखण्ड २.७२)

"गायों, विप्रों, वेदों, सतियों, सत्यवादियों, लोभरहितों और सातवें दानशीलोंके द्वारा पृथिवी धारण की जाती है ।।"

२७.

अश्वत्थो ब्राह्मणा गावो मन्मयास्तारयन्ति हि।
तस्मादेतत् प्रयत्नेन त्रयं पूजय पाण्डव।।

(महाभारत - आश्वमेधिकपर्व ९२ दा०)

"हे पाण्डव! मेरे स्वरूप होनेके कारण पीपल, ब्राह्मण और गौ – ये तीनों मनुष्योंका उद्धार करनेवाले हैं, इसलिए तुम इन तीनोंकी यथायोग्य पूजा करो अर्थात् इनका आस्थापूर्वक पोषण करो।।"

दृतिकण्ठ (गलकम्बल) तथा ककुद (कूबड़) युक्त वास्तव गोवंश पृथ्वीका धारक है।

२८.

अघ्न्या इति गवां नाम क एता हन्तुमर्हति।
महच्चकाराकुशलं वृषं गां वाऽऽलभेत् तु यः।।
(महाभारत - शान्तिपर्व २६२.४७)

"'. 'अघ्न्यम्' (ऋक् १. ३७.५), 'नीचीनमघ्न्या दुहे' (ऋक् १०. ५. ६०.११) , 'अघ्न्येयं सा वर्द्धतां सौभगाय' (ऋक् १.२२.१६४.२७) - 'न मारने योग्य आयी हुई यह गाय हमारे महान् सौभाग्यके लिए दूध बढ़ावे ' आदि वचनोंके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि श्रुतियोंमें गौओंको अवध्य कहा गया है। फिर उन्हें मारनेका विचार कौन करेगा ? जो गाय तथा बैलको मारता है , अर्थात् गोवंशका उच्छेद करता है, वह महान् पाप करता है।।"

२९.

यज्ञाङ्गं कथिता गावो यज्ञ एव च वासव।
एताभिश्च विना यज्ञो न वर्तेत कथञ्चन।।
(महाभारत - अनुशासनपर्व ८३.१७)

"इन्द्र! गौओंको यज्ञका अङ्ग और साक्षात् यज्ञस्वरूप बताया गया है। इनके दूध, दही, घीके बिना यज्ञ सम्पन्न नहीं हो सकता।।"

३०.

धारयन्ति प्रजाश्चैव पयसा हविषा तथा।
एताषां तनयाश्चापि कृषियोगमुपासते।।
(महाभारत - अनुशासनपर्व ८३.१८)

"गौवें अपने दूध - घीसे प्रजाका पालन - पोषण करती हैं। इनके पुत्र कृषिके काम आते हैं।।"

३१.

मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः।
वृद्धिमाकाङ्क्षता नित्यं गावः कार्याः प्रदक्षिणाः।।
(महाभारत - अनुशासनपर्व ६९.७)

"गायें सम्पूर्ण प्राणियोंकी माता हैं। वे सबको सुख देनेवाली हैं। जो अपने अभ्युदयकी इच्छा रखता हो, उसे उनकी सदा प्रदक्षिणा करनी चाहिए, अर्थात् उन्हें दाहिने करके चलना चाहिए।।"

३२.

पितरो वृषभा ज्ञेया गावो लोकस्य मातरः।
तासां तु पूजया राजन् पूजिताः पितृदेवताः।।
(महाभारत - आश्वमेधिकपर्व ९२ दाक्षि.)

"राजन्! वृषभोंको पिता समझना चाहिये और गौओंको लोकमाता। उन दोनोंकी पूजासे पितृदेवता पूजित होते हैं।।"

३३.

नाकीर्तयित्वा गाः सुप्यात् तासां संस्मृत्य चोत्पतेत्।
सायं प्रातर्नमस्येच्च गास्ततः पुष्टिमाप्नुयात्।।
(महाभारत - अनुशासनपर्व ७८.१६)

"गौओंका नामसङ्कीर्तन किये बिना न सोये। उनका स्मरण करके ही उठे। सायं - प्रातः उन्हें नमस्कार करे। उससे पुष्टि प्राप्त होती है।।"

३४.

गाश्च सङ्कीर्तयेन्नित्यं नावमन्येत तास्तथा।
अनिष्टं स्वप्नमालक्ष्य गां नरः सम्प्रकीर्तयेत्।।
(महाभारत - अनुशासनपर्व ७८.१८)

"प्रति दिन गौओंका सङ्कीर्त्तन करे; अर्थात् नाम ले, उनका कभी अपमान न करे। अनिष्ट स्वप्नके निवारणकी भावनासे मनुष्य गौका स्मरण - सङ्कीर्त्तन करे।।"

भगवान् श्रीकृष्णके **गोविन्द, गोपाल** - इन नामोंमें गायके नामका सन्निवेश है। अतः सोनेके पूर्व सुखशयनकी भावनासे इन नामोंका सङ्कीर्त्तन , संस्मरण करे तथा दुःस्वप्नके निवारणकी भावनासे भी इन नामोंका सङ्कीर्त्तन तथा संस्मरण करे।

"गोविन्द, गोपाल" आदि भगवन्नामोंका सङ्कीर्त्तन करनेपर गौवोंका स्मरण स्वाभाविक हो जाता है तथा गोपालन और गोसंरक्षणकी भावनाका भी उदय होता है।

"श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे
हे नाथ नारायण वासुदेव।"

ॐ

"गोविन्द जय जय गोपाल जय जय
राधारमण हरिगोविन्द जय जय।"

ॐ

गोविन्द! गोविन्द! हरे! मुरारे!
गोविन्द! गोविन्द! मुकुन्द! कृष्ण!
गोविन्द! गोविन्द! रथाङ्गपाणे!
गोविन्द! दामोदर! माधवेति!!

(स्कन्दपुराण २ वैष्णवखण्ड - कार्त्तिक०२.४६)

३५.

ब्राह्मणानां मतिर्वाक्यं कर्म श्रद्धा तपांसि च।
धारयन्ति महीं द्यां च शैक्यो वागमृतं यथा।।

(महाभारत - शान्तिपर्व ३४२. १७)

"जैसे शैक्य (छींका) दुग्ध, दधि - आदि गोरसका धारक है, वैसे ही ब्राह्मणोंकी बुद्धि, उनके लिपिबद्ध वाक्य (ग्रन्थाकार

वचन), उनके द्वारा अनुष्ठित कर्म, उनकी ईश्वर तथा धर्मादि सनातन मानबिन्दुओंमें आस्था, उनके द्वारा निष्पन्न विविध तप और उनके वचन पृथ्वी और स्वर्गके धारक हैं।।''

चतुर्दश भुवनात्मक ब्रह्माण्डमें इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके लोकोंके कारण; तद्वत् सनकादि – नारदादि निवृत्तिपरायण मनीषियोंके कारण जो दिव्यता है, उसका श्रेय वेदोक्त कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड तथा ज्ञानकाण्डको ही प्राप्त है। कालगर्भित तथा कालातीत वस्तुओंका परिज्ञान वैदिक वाङ्मयके द्वारा ही सम्भव है। अतः वेदोंका विलोप सर्व विलोप है। वेदोक्त कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड तथा ज्ञानकाण्डके विलोपसे विश्व नरक तथा नारकीय प्राणियोंका समुदाय ही सिद्ध होता है।

देहके नाशसे जीवके अनाशका, अन्यूनता तथा अनतिरिक्तताकी विधाका, वर्ण – वेष – विधिके समादरका, अधिकार और अभिरुचिमें तथा नीति और प्रीतिमें सामञ्जस्यका, उपयुक्त देश (स्थान) – काल – वस्तु तथा व्यक्तिके समादरका, स्वाध्याय और यज्ञादिके अनुष्ठानसे देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणके शोधनका तथा श्राद्ध, तर्पण, अग्निहोत्रादिके समाचरणसे समष्टिके पोषणमें जीवनके उपयोग और विनियोगका वेदोक्त कर्मकाण्डगत सिद्धान्त सर्वसुखप्रद है।

उत्पत्ति – स्थिति – संहृति – निग्रह (तिरोधान) और अनुग्रहशक्तिसम्पन्न हिरण्यगर्भात्मक सूर्य, विष्णु, शिव, शक्ति तथा गणपतिसंज्ञक पञ्चदेवों और उनके शास्त्रसम्मत विविध अवतारोंकी; तद्वत् इन पञ्च देवोंके प्रकाशव्यूह (कायव्यूह) रूप इन्द्रादि दिक्पालोंकी आराधनासे तथा अङ्गन्यास – करन्यास – भूशुद्धि – भूतशुद्धिके प्रभावसे दिव्य जीवनकी स्फूर्तिका वेदोक्त उपासनाकाण्डगत सिद्धान्त सर्वसुखप्रद है।

पञ्चदेवके मौलिकस्वरूप सच्चिदानन्द सर्वेश्वरकी अभिन्ननिमित्तोपादानकारणता और आत्मरूपताके विज्ञानसे मृत्यु, अज्ञता और दुःखके आत्यन्तिक उच्छेदका और स्वार्थ तथा परमार्थमें सामञ्जस्यका वेदोक्त ज्ञानकाण्डगत सिद्धान्त सर्वहितप्रद है।

सतियोंके समादरसे सुशीलता, शूरता, ओजस्विता और अमोघदर्शितासे सम्पन्न धर्म तथा अध्यात्मनिष्ठ वंशपरम्पराका समुदय सुनिश्चित है। इनके विलोपसे विश्वविघातक वंशपरम्पराका समुदय सुनिश्चित है। सर्वविध उत्कर्षकी भावनासे सत्य, हित, प्रिय तथा अनुद्वेगकर भाषण अपेक्षित है। गुणसागर नागर नर भी अल्प काम तथा लोभके वशीभूत होकर पतित हो जाता है। निष्काम तथा निर्लोभ अपनी उदारताके कारण विश्वपरिपोषक विश्वम्भरकल्प हो जाता है। अद्रोह, दम, दया – सम्पन्न दानशील विश्वविभूषण पङ्क्तिपावन होता है।

उक्तरीतिसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, काल, गोवंश, विप्र, वेद, सती, सत्यवादी, निर्लोभ और दानशील संज्ञक पृथ्वीके धारक तत्त्वोंका संरक्षण सर्वहितप्रद है। तद्वत् भूधरके भी धारक त्रिपथगा गङ्गादिका संरक्षण अपेक्षित तथा सर्वसुमङ्गल है।

३६.

देवतातिथिभृत्येभ्यः पितृभ्यश्चात्मनस्तथा।
ऋणवान् जायते मर्त्यस्तस्मादनृणतां व्रजेत्।।
(महाभारत - शान्तिपर्व २९२.९)

"प्रत्येक मनुष्य देवता, अतिथि, भरण – पोषणके योग्य कुटुम्बीजन, पितर तथा अपने आपका भी ऋणी होकर जन्म लेता है; अतः उसे ऋणमुक्त होनेका प्रयत्न करना चाहिए।।"

३७.

स्वाध्यायेन महर्षिभ्यो देवेभ्यो यज्ञकर्मणा।
पितृभ्यः श्राद्धदानेन नृणामभ्यर्चनेन च।।
(महाभारत - शान्तिपर्व २९२.१०)

"वेदशास्त्रोंके स्वाध्यायसे ऋषियोंके, यज्ञकर्मके द्वारा देवताओंके, श्राद्ध और दानसे पितरोंके तथा स्वागत – सत्कार – भोजन – सेवादिके द्वारा अतिथियोंके ऋणसे मुक्त होता है।।"

३८.

वाचा शेषावहार्येण पालनेनात्मनोऽपि च।
यथावद् भृत्यवर्गस्य चिकीर्षेत् कर्म आदितः।।
(महाभारत - शान्तिपर्व २९२.११)

"आत्मकल्याणमें साधनभूत सदुपदेशके श्रवण - मनन - निदिध्यासनसे, यज्ञशेष अन्नके भोजनसे तथा सर्वहितमें संलग्न रहते हुए स्थावर - जङ्गम प्राणिमात्रके यथासम्भव परिपालन - परिपोषणसे मनुष्य अपने ऋणसे मुक्त होता है तथा भरण - पोषणके योग्य सेवक और सम्बन्धियोंके परिपोषणमें आरम्भसे ही तत्पर रहनेपर उनके ऋणसे मुक्त हो जाता है।।"

सुलभ सहयोग और मानवोचित शीलके निर्वाहका अवसर प्राप्त होनेपर ऋणमुक्त होनेका प्रयत्न अवश्य कर्त्तव्य है। सुमङ्गल जीवन, सद्गति तथा मुक्तिमें तथा मानवोचित शीलकी अभिव्यक्तिमें सहयोगी व्यक्ति तथा वर्गका मनुष्य ऋणी होता है। इनके प्रति यथोचित दायित्वका शुचिता तथा दक्षतापूर्वक निर्वाह करनेपर व्यक्ति ऋण - मुक्त होता है। देवतुल्य ऋषियोंसे हमें मन्त्र तथा ग्रन्थ सुलभ हैं। अतः कृतज्ञताज्ञापनपूर्वक स्वाध्यायशील रहतेहुए मन्त्र तथा ग्रन्थसे लाभान्वित होना तथा तर्पणादिसे उन्हें सन्तृप्त करना ऋषि - ऋणसे मुक्त होना है। वर्षा , वरदान और देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणके उद्दीपनके द्वारा इन्द्र, वरुण, अग्नि, सूर्य,

चन्द्र, मरुद्गणादि जीवनयापनमें सहयोग तथा सद्गति – प्रदायक हैं। अतः यज्ञ तथा तर्पणादिके द्वारा उनका पोषण और उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन आवश्यक है। विविध मनुष्यों तथा पशुओंके सहयोगसे ; तद्वत् अन्य स्थावर तथा जङ्गम प्राणियोंके और आकाश, वायु , तेज, जल तथा पृथ्वी – संज्ञक पञ्चभूतोंके योगसे सुलभ और पोषित जीवनका सर्वहितकी भावनासे उपयोग और विनियोग आवश्यक है। निखिल विश्वको सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वरका श्रीविग्रह समझकर सर्व हितमें जीवनका उपयोग और विनियोग सम्भव है।

३९.

न्यायोपार्जितवित्तस्य दशमांशेन धीमता।
कर्तव्यो विनियोगश्च ईशप्रीत्यर्थमेव च।।
(स्कन्दपुराण माहेश्वर -केदारखण्ड १२.३५)

"बुद्धिमान् पुरुषको यह उचित है कि वह अपने न्यायपूर्वक उपार्जित धनका दसवाँ भाग ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये किसी सत्कर्ममें लगावे।।"

४०.

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च।
पञ्चधा विभजन्वित्तमिहामुत्र च मोदते।।
(श्रीमद्भागवत ८.१९.३७)

"वित्तका लौकिक तथा पारलौकिक उत्कर्षकी भावनासे धर्म, यश, अर्थ, काम और स्वजनोंके लिये पाँच प्रकारसे उपयोग तथा विनियोग विहित है।।"

४१.

दैवतेभ्यः पितृभ्यश्च संविभागोऽतिथिष्वपि।
असंत्यागश्च भृत्यानां श्रेय एतदसंशयम्।।
(महाभारत - शान्तिपर्व २८७.१९)

"देवताओं, पितरों और अतिथियोंको उनका भाग देना तथा भरण - पोषण करनेयोग्य व्यक्तियोंका त्याग न करना - यह कल्याणका निश्चित साधन है।।"

४२.

नालसाः प्राप्नुवन्त्यर्थान् न क्लीबा नाभिमानिनः।
न च लोकरवाद् भीता न वै शश्वत् प्रतीक्षिणः।।
(महाभारत - शान्तिपर्व १४०.२३)

"आलसी, कायर, अभिमानी, लोकचर्चासे भयभीत और सदा समयकी प्रतीक्षा करनेवाले अर्थात् भाग्यके भरोसे रहनेवाले अपने अभीष्ट अर्थ (प्रयोजन) को नहीं प्राप्त कर सकते।।"

४३.

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।

(मनुस्मृति ३.५६)

"जिस कुलमें वस्त्र, आभूषण और मधुरवचनादिद्वारा नारियाँ पूजित – प्रतिष्ठित अर्थात् सम्मानित होती हैं, उसमें देवता रमण करते हैं, अर्थात् देववृन्द प्रमुदित होकर उस कुलको सब प्रकारसे समृद्ध करते हुए निवास करते हैं ; किन्तु जिस कुलमें ये पूजित – प्रतिष्ठित अर्थात् सम्मानित नहीं होतीं, वहाँ सब क्रियाएँ निष्फल होती हैं।।"

४४-४६.

नास्ति माता समं तीर्थं नास्ति मात्रा समो गतिः।
नास्ति मात्रा समं त्राणं नास्ति मात्रा समा प्रपा।।
कुक्षौ संधारणाद्धात्री जननाज्जननी तथा।
अङ्गानां वर्द्धनादम्बा वीरसूत्वेन वीरसूः।।
शिशोः शुश्रूषणाच्छक्तिर्माता स्यान्माननाच्च सा।
(स्कन्दपुराण-माहेश्वरकुमारिका खण्ड ४.९९-१०१)

"माताके समान कोई तीर्थ नहीं है, माताके समान कोई गति नहीं है, माताके समान कोई रक्षक नहीं है तथा माताके समान कोई प्याऊ नहीं है। माता अपने गर्भमें धारण करनेके कारण '**धात्री**' है, जन्म देनेवाली होनेके कारण '**जननी** ' है, अङ्गोंकी वृद्धि करनेके कारण '**अम्बा**' है, वीरपुत्रका प्रसव करनेके कारण '**वीरप्रसू** ' कहलाती है, शिशुकी शुश्रूषा करनेके कारण वह '**शक्ति**' कही गयी है तथा सदा सम्मान देनेके कारण उसे '**माता** ' कहते हैं।।"

४७.

उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते।।
(मनुस्मृति २.१४५)

"वेदाङ्गोंके सहित मन्त्रब्राह्मणात्मक वेदके एकदेशको तथा शिक्षा – कल्प – व्याकरण – निरुक्त, ज्योतिष तथा छन्दःशास्त्र – संज्ञक वेदाङ्गोंको जीविकाके निमित्त पढ़ानेवाले द्विज उपाध्याय कहे जाते हैं। शिष्यका यज्ञोपवीत संस्कारकर उसे यज्ञविद्यारूप कल्प तथा उपनिषदोंके सहित वेदशाखाका अध्ययन करानेवाले द्विज आचार्य कहे जाते हैं। उपाध्यायसे आचार्यका दस गुना, आचार्यसे पिताका सौ गुना और पितासे माताका स्थान हजार गुना ऊँचा है।।"

४८.

माता गरीयसी यच्च तेनैतां मन्यते जनः।
ज्येष्ठो भ्राता पितृसमो मृते पितरि भारत।।
(महाभारत – अनुशासनपर्व १०५.१६)

"भरतनन्दन! माताका गौरव सबसे अधिक है, इसलिए लोग उसका विशेष आदर करते हैं। पिताकी मृत्यु हो जानेपर बड़े भाईको ही पिताके समान समझना चाहिए।।"

४९.

ज्येष्ठा मातृसमा चापि भगिनी भरतर्षभ।।
भ्रातुर्भार्यां च तद्वत् स्याद् यस्या बाल्ये स्तनं पिबेत्।।
(महाभारत - अनुशासनपर्व १०५.१९- २०)

"भरतश्रेष्ठ! बड़ी बहिन माताके समान है। बड़े भाईकी पत्नी तथा वचपनमें जिसका दूध पिया हो, वह धाय भी माताके समान है।।"

५०.

अर्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा।
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्यामूलं तरिष्यतः।।
(महाभारत - आदिपर्व ७४. ४१)

"भार्या पुरुषका आधा अङ्ग है। भार्या उसका सबसे उत्तम सखा है। भार्या धर्म, अर्थ और कामका मूल है। संसारसागरसे तरनेकी इच्छावाले पुरुषका भार्या ही प्रमुख साधन है।।"

५१.

सखायः प्रविविक्तेषु भवन्त्येताः प्रियंवदाः।
पितरो धर्मकार्येषु भवन्त्यार्तस्य मातरः।।
(महाभारत - आदिपर्व ७४. ४३)

"ये स्त्रियाँ एकान्तमें प्रिय वचन बोलनेवाली सङ्गिनी हैं। धर्मकार्योंमें पिताकी भाँति पतिकी हितैषिणी हैं। सङ्कटके समय माताके समान हित साधनेवाली हैं।।"

५२.

सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रजावती।
सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता।।
(महाभारत - आदिपर्व ७४. ४०)

"वही भार्या है, जो घरके काम - काजमें दक्ष हो। वही भार्या है, जो सन्तानवाली हो। वही भार्या है, जो अपने पतिको प्राणोंके समान प्रिय मानती हो। वही भार्या है, जो पतिव्रता हो।।"

५३.

सुसंरब्धोऽपि रामाणां न कुर्यादप्रियं नरः।
रतिं प्रीतिं च धर्मं च तास्वायत्तमवेक्ष्य हि।।
(महाभारत - आदिपर्व ७४. ५१)

"रति, प्रीति तथा धर्म पत्नीके ही अधीन हैं। ऐसा सोचकर पुरुषको चाहिए कि वह कुपित होनेपर भी पत्नीके साथ कोई अप्रिय वर्ताव न करे।।"

५४.

भार्यां पतिः सम्प्रविश्य स यस्माज्जायते पुनः।
जायायास्तद्धि जायात्वं पौराणाः कवयो विदुः।।
(महाभारत - आदिपर्व ७४. ३७)

"पति ही पत्नीमें गर्भरूपसे प्रवेश करके पुत्ररूपमें जन्म लेता है, यही जन्म देनेवाली जायाका जायात्व है; जिसे पुराणवेत्ता जानते हैं।।"

५५.

आत्माऽऽत्मनैव जनितः पुत्र इत्युच्यते बुधैः।
तस्माद् भार्यां नरः पश्येन्मातृवत् पुत्रमातरम्।।
(महाभारत - आदिपर्व ७४. ४८)

"'आत्मा वै पुत्रनामासि' (कैषीतकि-ब्राह्मणोपनिषत् २.११, आदिपर्व ७४.६३)के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि पत्नीके गर्भसे समुत्पन्न स्वयंको ही विद्वान् पुत्र कहते हैं। अत एव मनुष्यको चाहिए कि वह अपनी उस पत्नीको जो पुत्रकी माता बन चुकी है, माताके ही समान देखे।।"

५६.

पिता स्वर्गः पिता धर्मः पिता हि परमं तपः।
पितरि प्रीतिमापन्ने सर्वाः प्रीणन्ति देवताः।।
(स्कन्दपुराण- माहेश्वरकुमारिकाखण्ड ४.८९-९०)

"पिता स्वर्ग है, पिता धर्म है तथा पिता सर्वश्रेष्ठ तप है। पिताके प्रसन्न हो जानेपर सब देवता प्रसन्न हो जाते हैं।।"

५७-५८.

सन्न्यस्ताखिलकर्मापि पितुर्वन्द्यो हि मस्करी।
सर्ववन्द्येन यतिना प्रसूर्वन्द्या प्रयत्नतः।।
इदमेव तपोऽत्युग्रमिदमेव परं व्रतम्।
अयमेव परो धर्मो यत्पित्रोः परितोषणम्।।
(स्कन्दपुराण - काशीखण्डपूर्व ११.५०-५१)

"सर्वकर्मोंका सन्न्यास करनेवाले सन्न्यासीके द्वारा भी पिता वन्द्य है, उस सर्व वन्द्य सन्न्यासीके द्वारा भी प्रयत्नपूर्वक माताकी वन्दना करनी चाहिये। यही अति उग्र तप है, यही सर्वश्रेष्ठ व्रत है और सर्वोत्तम धर्म है कि माता तथा पिताको सन्तुष्ट किया जाय।।"

५९.

येन प्रीणाति पितरं तेन प्रीतः प्रजापतिः।
प्रीणाति मातरं येन पृथिवी तेन पूजिता।।
(महाभारत - अनुशासनपर्व ७. २५)

"मनुष्य जिस व्यवहारसे पिताको प्रसन्न करता है, उससे भगवान् प्रजापति प्रसन्न होते हैं। जिस व्यवहारसे वह माताको सन्तृप्त करता है, उससे पृथ्वी देवीकी भी पूजा हो जाती है। अभिप्राय यह है कि पिता प्रजापतिस्वरूप हैं और माता पृथ्वीरूपा हैं।।"

६०.

येन प्रीणात्युपाध्यायं तेन स्याद् ब्रह्मपूजितम्।
सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः।।
(महाभारत - अनुशासनपर्व ७. २६)

"मनुष्य जिस व्यवहारसे आचार्य उपाध्यायको प्रसन्न करता है, उससे सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वर ब्रह्मकी पूजा सम्पन्न हो जाती है। जिस विधासे वह माता, पिता तथा आचार्य - इन तीनोंको प्रसन्न करता है; उसके द्वारा सर्व धर्मोंका समादर सम्पन्न माना जाता है। जिसने अपने दुर्व्यवहारसे माता - पिता - आचार्य - इन तीनोंका अनादर कर दिया, उसकी यज्ञादि सर्व क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं।।"

६१.

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत्।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।।
(गरुडपुराण-नीतिसार १.१११.१२)

"परायी स्त्रियोंमें भी जिसकी माताके तुल्य दृष्टि है, परायी वस्तुओंमें जिसकी मिट्टीके ढेलेके तुल्य तुच्छ - बुद्धि है, स्थावर तथा जङ्गम सर्वप्राणियोंमें आत्मतुल्य - दृष्टि है; वह यथार्थदर्शी पण्डित है।।"

६२.

पुन्नाम्नो नरकाद् यस्मात् पितरं त्रायते सुतः।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा।।
(महाभारत - आदिपर्व ७४. ३९)

"पुत्र 'पुत्' नामक नरकसे पिताका त्राण करता है, अतः श्रीब्रह्माजीने उसे 'पुत्र' (पुत्त्र) कहा है।।"

६३.

पतिर्माता पतिर्विष्णुः पतिर्ब्रह्मा पतिः शिवः।
पतिर्गुरुः पतिस्तीर्थमिति स्त्रीणां विदुर्बुधाः।।
(स्कन्दपुराण- वैष्णवभूमिवाराहखण्ड २६.८३)

"स्त्रियोंके लिये पति ही माता है, पति ही विष्णु है, पति ही ब्रह्मा है, पति ही शिव है, पति ही गुरु है तथा पति ही तीर्थ है; ऐसा विज्ञ महामहानुभाव मानते हैं ।।"

६४.

शरीरमेतौ सृजतः पिता माता च भारत।।
आचार्यशास्ता या जातिः सा सत्या साजरामरा।
(महाभारत - अनुशासनपर्व १०५.१८-१८.१/२)

"भारत! पिता तथा माता केवल शरीरको ही जन्म देते हैं; जबकि अध्यात्मोपदेशक आचार्यके उपदेशसमुद्भूत ज्ञानसे जो निरावरण आत्मस्वरूपका स्फुरण होता है; वह सत्य, अजर तथा अमर है।।"

६५.

पितॄन् देवानृषीन् विप्रानतिथींश्च निराश्रयान्।
यो नरः प्रीणयत्यन्नैस्तस्य पुण्यफलं महत्।।
(महाभारत - आश्वमेधिकपर्व ९२ दा०)

"जो देवताओं, पितरों, ऋषियों, ब्राह्मणों, अतिथियों और निराश्रयोंको अन्नसे तृप्त करता है, उसे महान् पुण्यफलकी प्राप्ति होती है।।"

६६.

जननी जन्मभूमिश्च जाह्नवी च जनार्दनः।
जनकः पञ्चमश्चैव जकाराः पञ्च दुर्लभाः।।
(सुभाषितरत्नभाण्डागार १५७.१७०)

"जननी (माता), जन्मभूमि, जाह्नवी (गङ्गा), जनार्दन और पाँचवें जनक (पिता)- ये पाँचों जकार दुर्लभ हैं।।"

६७.

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।।
(श्रीविष्णुपुराण २.३.२४)

"देवगण भी निरन्तर यही गान करते हैं कि जिन्होंने स्वर्ग और अपवर्गके मार्गभूत भारतभूखण्डमें जन्म लिया है, वे पुरुष हम देवताओंकी अपेक्षा भी अधिक धन्य हैं।।"

६८.

अहो भुवः सप्तसमुद्रवत्या
द्वीपेषु वर्षेष्वधिपुण्यमेतत्।
गायन्ति यत्रत्यजना मुरारेः
कर्माणि भद्राण्यवतारवन्ति।।
(श्रीमद्भागवत ५.६.१३)

"अहो! सात समुद्रोंवाली पृथ्वीके समस्त द्वीप और वर्षोंमें यह भारतवर्ष बड़ी ही पुण्यभूमि है; क्योंकि यहाँके निवासी श्रीहरिके मङ्गलमय अवतारचरित्रोंका गान करते हैं।।"

६९.

अहो अमीषां किमकारि शोभनं
प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे
मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः।।
(श्रीमद्भागवत ५.१९.२१)

"अहो! जिन जीवोंने भारतवर्षमें श्रीहरिकी सेवाके योग्य मनुष्यजन्म प्राप्त किया है, उन्होंने ऐसा कौन – सा पुण्य किया है?

अथवा इनपर स्वयं श्रीहरि ही प्रसन्न हो गये हैं? इस परम सौभाग्यके लिये तो निरन्तर हम देववृन्द भी तरसते रहते हैं।।"

७०.

किं दुष्करैर्नः क्रतुभिस्तपोव्रतै-
दानादिर्भिर्वा द्युजयेन फल्गुना।
न यत्र नारायणपादपङ्कज-
स्मृतिः प्रमुष्टातिशयेन्द्रियोत्सवात्।।
(श्रीमद्भागवत ५.१९.२२)

"हमें बड़े कठोर यज्ञ , तप, व्रत तथा दानादि करके जो यह तुच्छ स्वर्गका अधिकार प्राप्त हुआ है— इससे लाभ ही क्या है? यहाँ तो इन्द्रियोंके भोगोंकी अधिकताके कारण स्मृतिशक्ति छिन जाती है, अतः कभी श्रीमन्नारायणके चरणकमलोंकी स्मृति होती ही नहीं।।"

७१.

कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवात्
क्षणायुषां भारतभूजयो वरम्।
क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः
सन्न्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः।।
(श्रीमद्भागवत ५.१९.२३)

"जिन ऊर्ध्व लोकोंके निवासियोंकी एक – एक कल्पकी

आयु होती है; तथापि जहाँसे संसारचक्रमें पुनः लौटना पड़ता है, उन लोकोंकी अपेक्षा भी भारतभूमिमें अल्पायु होकर जन्म लेना अच्छा है। कारण यह है कि यहाँ धीर पुरुष एक क्षणमें ही अपने इस मर्त्य शरीरसे किये हुए सम्पूर्ण कर्म श्रीहरिको समर्पण करके उनका अभयपद प्राप्त कर लेता है।।"

७२.

आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा।।

(स्कन्दपुराण - प्रभासखण्ड ३१७.१४)

"सब शास्त्रोंको देखकर और बार - बार उनपर विचार करके अर्थात् सर्वशास्त्रोंका अध्ययन और अनुशीलन करके एकमात्र यही सिद्धान्त स्थिर किया गया है कि सदा भगवान् नारायणका ध्यान करना चाहिये।।"

७३.

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।।

(श्रीविष्णुपुराण २.३.१, ब्रह्मपुराण १९.१)

"जो समुद्रके उत्तर और हिमालयके दक्षिणमें स्थित है, वह भारत कहलाता है। उसमें भरतकी सन्तान बसी हुई है।।"

७४.

आसमुद्राच्च यत् पूर्वादासमुद्राच्च पश्चिमात्।
हिमाद्रिविन्ध्ययोर्मध्यमार्यावर्तं प्रचक्षते।।
(महाभारत - आश्वमेधिकपर्व ९२ दा०)

"पूर्व समुद्र तथा पश्चिम समुद्र , तद्वत् हिमालय और विन्ध्याचलके मध्य स्थित भूभाग आर्यावर्त कहा जाता है।।"

७५.

नवयोजनसाहस्त्रो विस्तारोऽस्य महामुने।
कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गं च गच्छताम्।।
(श्रीविष्णुपुराण २.३.२, ब्रह्मपुराण १९.२)

"महामुने! इसका विस्तार नौ हजार योजन (१ योजन चार कोस या आठ मील) है। यह स्वर्ग तथा अपवर्ग (मोक्ष)प्राप्त करनेवालोंकी कर्मभूमि है।।"

७६.

कर्माण्यसङ्कल्पित तत्फलानि
सन्न्यस्य विष्णौ परमात्मभूते।
अवाप्य तां कर्म महीमनन्ते
तस्मिँल्लयं ये त्वमलाः प्रयान्ति।।
(श्रीविष्णुपुराण २.३.२५)

"जो इस कर्मभूमिमें जन्म लेकर फलाकाङ्क्षासे रहित अपने कर्मोंको परमात्मस्वरूप श्रीविष्णुको अर्पण करनेके फलस्वरूप निर्मल होकर उन अनन्तमें लीन हो जाते हैं, वे अवश्य ही धन्य हैं।।"

७७.

वित्ते त्यागः क्षमा शक्तौ दुःखे दैन्यविहीनता।
निर्दम्भता सदाचारे स्वभावोऽयं महात्मनाम्।।

(सुभाषितावलिः २६४)

"वैभव प्राप्त होनेपर त्याग, शक्ति सुलभ होनेपर क्षमा, दुःख प्राप्त होनेपर अदीनता तथा सदाचरणमें निर्दम्भता – यह महात्माओंका स्वभाव है।।"

७८.

संपदि यस्य न हर्षो विपदि न विषादो रणे च धीरत्वम्।
तं भुवनत्रयतिलकं जनयति जननी सुतं विरलम्।।

(पञ्चतन्त्र २.१८०)

"संपत्ति सुलभ होनेपर जिसे हर्ष नहीं होता, संकट प्राप्त होनेपर जिसे विषाद नहीं होता, संग्राममें जिसका धैर्य अडिग रहता है; ऐसे तीनों भुवनोंके तिलकरूप विरले पुत्रको कोई जननी जन्म देती है।।"

७९.

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था
विश्वम्भरा पुण्यवती च तेन।
अपारसच्चित्सुखसागरेऽस्मिन्
लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः।।
(सूतसंहिता २ ज्ञानयोग०२०.४५)

"अपार सच्चित्सुखसागर साक्षात् अपरोक्ष इस परब्रह्ममें जिसका चित्त लीन है, उसका कुल पवित्र है, उसे जन्म देनेवाली माता धन्या है, विश्वका भरण करनेवाली पृथ्वी उससे पुण्यवती है।।"

८०.

मूकः परापवादे परदारनिरीक्षणेऽप्यन्धः।
पङ्गुः परधनहरणे स जयति लोकत्रये पुरुषः।।
(सुभाषितरत्नभाण्डागारम् ४८.१२४)

"परनिन्दा करनेमें जो मूक है, अर्थात् जो परनिन्दक नहीं है तथा परायी स्त्रीके निरीक्षणमें अन्ध है, अर्थात् परायी स्त्रीको कुत्सित दृष्टिसे निहारनेवाला नहीं है, तद्वत् परधनके अपहरणमें पङ्गु है, अर्थात् परधनके अपहरणमें जिसकी प्रीति – प्रवृत्ति सर्वथा नहीं है, वह त्रिलोकतिलक त्रिभुवनविजयी है।।"

८१.

अयं बन्धुरयं नेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।
(महोपनिषत् ६.७१)

"विश्व सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वरकी अभिव्यक्ति और उनका अभिव्यञ्जक संस्थान है। अत एव पञ्च भूतोंके सहित समस्त स्थावर - जङ्गम प्राणी अपने समाश्रय परमात्माके परिवारके सदस्य हैं। ऐसी स्थितिमें ' यह बन्धु है, यह अबन्धु' ऐसा आकलन विवेकविहीन तुच्छ विचारकोंका है। जब कि जो उदारचरित हैं, उनकी दृष्टिमें तो पृथिवीसे उपलक्षित समस्त ब्रह्माण्ड ही कुटुम्ब है।।"

८२.

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम्।
सत्यपूतां वदेद् वाचं मनःपूतं समाचरेत्।।
(श्रीमद्भागवत ११. १८.१६)

"नेत्रोंसे धरती देखकर पैर रक्खे, वस्त्रसे छानकर जल पिये, मुँहसे प्रत्येक बात सत्यसे पवित्र हुई ही बोले , मनसे शुभसङ्कल्पसमन्वित पवित्र विचार ही करे।।"

८३.

न हि प्रमादात् परमस्ति कश्चित्
वधो नराणामिह जीवलोके।
प्रमत्तमर्था हि नरं समन्तात्
त्यजन्त्यनर्थाश्च समाविशन्ति।।
(महाभारत - सौप्तिकवध १०.१९)

"मनुष्योंके लिए प्रमादसे बढ़कर इस संसारमें दूसरी कोई मृत्यु नहीं है। प्रमत्त मनुष्यको सम्पूर्ण अर्थ सब ओरसे त्याग देते हैं और अनर्थ बिना बुलाये ही उसके समीप आ जाते हैं ।।"

८४.

न हि प्रमत्तेन नरेण शक्यं
विद्या तपः श्रीर्विपुलं यशो वा।
पश्याप्रमादेन निहत्य शत्रून्
सर्वान् महेन्द्रं सुखमेधमानम्।।
(महाभारत - सौप्तिकवध १०.२२)

"प्रमादी मनुष्य कभी विद्या, तप, वैभव अथवा महान् यश नहीं प्राप्त कर सकता। देखो देवराज इन्द्र प्रमाद त्याग देनेके कारण ही अपने सब शत्रुओंका संहार करके सुखपूर्वक उन्नति प्राप्त कर रहे हैं।।"

८५.

सुखं दुःखान्तमालस्यं दाक्ष्यं दुःखं सुखोदयम्।
भूतिः श्रीर्ह्रीर्धृतिः कीर्तिर्दक्षे वसति नालसे।।

(महाभारत - शान्तिपर्व २७.३१)

''आलस्य सुखरूप प्रतीत होता है, परन्तु उसका अन्त दुःख है तथा कर्त्तव्यपरायणतारूपा दक्षता दुःखरूप प्रतीत होती है; परन्तु उससे सुखका उदय होता है, साथ ही विभूति (ऐश्वर्य), लक्ष्मी (स्वस्थ शरीर और सुखद सम्बन्धी), लज्जा, धृति और कीर्ति – ये कार्यदक्ष पुरुषमें ही निवास करती हैं, न कि आलसीमें।।''

८६.

असङ्कल्पाज्जयेत् कामं क्रोधं कामविवर्जनात्।
अर्थानर्थेक्षया लोभं भयं तत्त्वावमर्शनात्।।

(श्रीमद्भागवत ७.१५.२२)

''सङ्कल्पोंके परित्यागसे कामको, कामके परित्यागसे क्रोधको, संसारमें रचे – पचे जिसे अर्थ कहते हैं, उसे अनर्थ समझकर लोभको और तत्त्वविचारसे भयको जीतना चाहिये।।''

८७.

आन्वीक्षिक्या शोकमोहौ दम्भं महदुपासया।
योगान्तरायान् मौनेन हिंसां कायाद्यनीहया।।

(श्रीमद्भागवत ७.१५.२३)

''अध्यात्मविद्यासे शोक और मोहपर, महापुरुषोंकी उपासनासे दम्भपर, मौनके द्वारा योगके विघ्नोंपर और देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणको संयत रखकर हिंसापर विजय प्राप्त करनी चाहिये।। ''

८८.

कृपया भूतजं दुःखं दैवं जह्यात् समाधिना।
आत्मजं योगवीर्येण निद्रां सत्त्वनिषेवया।।
(श्रीमद्भागवत ७.१५.२४)

''आधिभौतिक दुःख (ताप) को कृपाके द्वारा, आधिदैविक दुःखको समाधिके द्वारा, आध्यात्मिक दुःखको योगबलके द्वारा और निद्राको सत्त्वगुणके सेवनके द्वारा जीतना चाहिये।।''

विवक्षावशात् मनुष्य – पश्वादि; तद्वत् शब्द – स्पर्श – रूप – रस –गन्धसंज्ञक पञ्च विषय और इनके अभिव्यञ्जक संस्थान पुष्प – पाषाण – पश्वादिका नाम **'अधिभूत'** है। इनकी प्रतिकूलतासे प्राप्त वेदना **'आधिभौतिक ताप'** है। देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणका नाम **'अध्यात्म'** है। ज्वरादि व्याधि तथा कामादि आधिके योगसे प्राप्त वेदना **'आध्यात्मिक ताप'** है। पृथ्वी – वरुण – सूर्य – चन्द्र – अग्नि – वायु – यमादिका नाम **'अधिदैव '** है। भूकम्प, अनावृष्टि, अतिवृष्टि, अग्निकाण्ड, आँधी और यमयातनासे प्राप्त वेदना **'आधिदैविक ताप'** है।

आक्रोशविहीनता भूतदया है और संयम – तितिक्षा आत्मकृपा है। सुषुप्तिके सदृश समाधिमें अधिदैवसहित तापका भान असिद्ध है। यम – नियमसे इन्द्रियसंयमरूप योगबलका, आसनसे शरीरसंयमरूप योगबलका, प्राणायामसे प्राणसंयमरूप योगबलका, प्रत्याहार तथा धारणासे मनःसंयमरूप योगबलका और ध्यानसे बुद्धिसंयमरूप योगबलका आलम्बन अपेक्षित है।

सात्त्विक आगम (ग्रन्थ) – आहार (अन्न – जल) – प्रजा (सङ्ग) – देश (स्थान) – काल – कर्म – जन्म (सप्तधातुशोधन) – ध्यान (चिन्तन), – मन्त्र और संस्कार– समुद्भूत सत्त्वगुणकी समृद्धिके द्वारा सत्त्वगुणका समुदय सम्भव है – **'' आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्म च जन्म च। ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः।।'' (श्रीमद्भागवत ११.१३.४)** इस भगवद्वचनके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है। सत्त्वगुणके उत्कर्षसे निद्रापर विजय सम्भव है।

८९.

रजस्तमश्च सत्त्वेन सत्त्वं चोपशमेन च।
एतत् सर्वं गुरौ भक्त्या पुरुषो ह्यञ्जसा जयेत्।।
(श्रीमद्भागवत ७.१५.२५)

"सत्त्वगुणके द्वारा रजोगुण और तमोगुणपर और उपरतिके द्वारा सत्त्वगुणपर विजय प्राप्त करनी चाहिये। गुरुभक्तिके द्वारा साधक इन सब दोषोंपर विजय प्राप्त कर सकता है।।"

९०-९१.

कामक्रोधौ भयं निद्रा पञ्चमः श्वास उच्यते।
एते दोषाः शरीरेषु दृश्यन्ते सर्वदेहिनाम्।।
छिन्दन्ति क्षमया क्रोधं कामं सङ्कल्पवर्जनात्।
सत्त्वसंसेवनान्निद्रामप्रमादाद् भयं तथा।
छिन्दन्ति पञ्चमं श्वासमल्पाहारतया नृप।।
(महाभारत - शान्तिपर्व ३०१. ५५-५७)

"हे राजन् ! काम, क्रोध, भय, निद्रा और श्वास - ये पाँच दोष समस्त देहधारियोंके शरीरमें देखे जाते हैं। सत्पुरुष क्षमासे क्रोधका, सङ्कल्पके त्यागसे कामका, सत्त्वगुणके सेवनसे निद्राका, प्रमादके त्यागसे भयका और अल्पाहारके सेवनसे पाँचवें श्वासदोषका नाश करते हैं ।।"

९२.

आत्मसम्मितमाहारमाहरेदात्मवान्यतिः।
आहारस्य च भागौ द्वौ तृतीयमुदकस्य च।
वायोः सञ्चारणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत्।।
(सन्न्यासोपनिषत् ५९)

संयमी यति शास्त्रसम्मत, सुपाच्य तथा रुचिकर आहारका सेवन करे। आहार (अन्न)का दो भाग, जलका तीसरा भाग तथा वायुके सञ्चारके लिए चौथा भाग अवशेष रक्खे। अभिप्राय यह है कि उदरका १/२ अन्नसे और १/४ जलसे पूर्ण करे तथा शेष १/४ वायुके लिए रिक्त रक्खे।।

९३.

अकुर्वन्विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन्।
प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते नरः।।
(मनुस्मृति ११. ४४)

''सन्ध्या – तर्पणादि शास्त्रोक्त कर्मको नहीं करता हुआ तथा हिंसादि शास्त्रप्रतिषिद्ध कर्मको करता हुआ और इन्द्रियोंके विषयोंमें अत्यन्त आसक्त होता हुआ मनुष्य प्रायश्चित्त करने योग्य होता है।।"

शास्त्रसम्मत विधिके पालनसे लाभ सुनिश्चित है और निषेधके पालनसे हानि असम्भव है। यह तथ्य जल, विद्युत् , अग्निसे सम्बद्ध विधि तथा निषेधके पालनसे हृदयङ्गम करने योग्य है। विधिसम्मत आचरणमें श्रद्धा अपेक्षित है। निषेधके उल्लङ्घनसे विस्फोट सुनिश्चित है। अतः निषिद्धाचरणका त्याग नितान्त अपेक्षित है।

९४.

प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते।
तपोनिश्चयसंयुक्तं प्रायश्चित्तमिति स्मृतम्।।
(मनुस्मृति ११. ४७ (५).)

''. 'प्रायः ' तपको कहते हैं तथा 'चित्त ' निश्चयको कहते हैं। अतः तपका निश्चयके साथ संयुक्त होना प्रायश्चित्त है। अर्थात् पापके फलस्वरूप सम्भावित यातनासे मुक्त होनेकी भावनासे, तद्वत् लोकमें तिरस्कृत न होनेकी भावनासे दृढ़तापूर्वक पापापनोदक तपमें संलग्न होना प्रायश्चित्त है।।"

९५.

नास्तिक्यं वेदनिन्दां च देवतानां च कुत्सनम्।
द्वेषं दम्भं च मानं च क्रोधं तैक्ष्ण्यं च वर्जयेत्।।
(मनुस्मृतिः ४. १६३)

''परलोक तथा परमेश्वरमें अनास्थारूप नास्तिकताका, कालगर्भित तथा कालातीत सर्व वस्तुओंके प्रतिपादक तथा सर्वविध उत्कर्षके ख्यापक वेदोंकी निन्दाका, इन्द्रियानुग्राहक और सर्वविध पोषक देवोंकी निन्दाका; तद्वत् द्वेष – दम्भ – अभिमान – क्रोध और क्रूरताका त्याग करे।।"

९६.

वासनायास्तथा वह्नेर्ऋणव्याधिद्विषामपि।
स्नेहवैरविषाणं च शेषः स्वल्पोऽपि बाधते।।
(अन्नपूर्णोपनिषत् ५.१७)

"वासना तथा अग्नि, ऋण, व्याधि, शत्रु, स्नेह (आसक्ति), वैर और विषाक्त बेधक वस्तुओंका स्वल्प शेष रहना भी बाधक (क्लेशप्रदायक) सिद्ध होता है।।"

'रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गिनिअ न छोट' **(रामचरितमानस अरण्यकाण्ड २१क)**–'शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, राजा और सर्पको कभी छोटा न समझे ' .

९७.

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।।
(नारदपरिव्राजकोपनिषत् ३. ३७)

"विषय – भोगोंकी कामना भोग्य पदार्थोंके उपभोगसे कदापि शान्त नहीं होती , विषयोपभोगसें तो वह बढ़ती ही है; ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार घृत डालनेसे आग शान्त नहीं होती, प्रत्युत (बल्कि) पुनः अधिक ही प्रज्वलित होती है।।"

९८.

श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च भुक्त्वा च दृष्ट्वा घ्रात्वा च यो नरः।
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः।।
(नारदपरिव्राजकोपनिषत् ३. ३८)

"जो मधुर या कटु शब्द सुनकर, कोमल या कठोर स्पर्शकर, स्वादिष्ट या स्वादहीन भोजनकर, सुन्दर या विकृत रूप देखकर और सुगन्ध या दुर्गन्ध सूँघकर न तो हर्षित होता है, न ग्लानिका ही अनुभव करता है; वह जितेन्द्रिय समझने योग्य है।।"

९९.

यस्य वाङ्मनसी शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा।
स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम्।।
(नारदपरिव्राजकोपनिषत् ३. ३९)

"जिसका मन शुद्ध है और जिसकी वाणी शुद्ध है, तद्वत ये दोनों सर्वदा दोषोंसे सुरक्षित (विनिर्मुक्त) हैं; वेदान्तसम्मत पूर्ण फल वही प्राप्त करता है।।"

१००-१०१.

छिन्नदोषो मुनिर्योगान् युक्तो युञ्जीत द्वादश।
देशकर्मानुरागार्थानुपायापायनिश्चयैः।।
चक्षुराहारसंहारैर्मनसा दर्शनेन च।

यच्छेद् वाङ्मनसी बुद्ध्या य इच्छेज्ज्ञानमुत्तमम्।
ज्ञानेन यच्छेदात्मानं य इच्छेच्छान्तिमात्मनः।।
(महाभारत-शान्तिपर्व २३६.३-४.१/२)

"समाहितचित्त मुनिको चाहिये कि वह रागादि – दोषोंको उच्छिन्न करके योगमें सहयोगी देशयोग (शुद्ध–समतल–निरुपद्रव – निर्जन स्थान), कर्मयोग (युक्त आहार – विहार–चेष्टा – निद्रादि सकल व्यवहार), अनुरागयोग (परमात्मा और उनकी प्राप्तिके उपायोंमें अद्भुत आस्था और राग), अर्थयोग (धर्मानुकूल अल्पसामग्रीका अर्जन और उपयोग), उपाययोग(ध्यानोपयोगी आसनका उपयोग), अपाययोग (अनासक्ति), निश्चययोग (गुरु – गोविन्द और ग्रन्थमें पूर्ण आस्था), चक्षुर्योग(नासिकाग्रदृष्टि), आहारयोग (शास्त्रसम्मत शुद्ध – सुपाच्य – सुरुचिकर – सीमित – सात्त्विक आहार), संहारयोग(बहर्मुखताका परित्याग), मनोयोग (शुद्ध और समाहित मनःस्थिति) और दर्शनयोग (जन्म – मृत्यु – जरा – व्याधियुक्त सदोष तथा विषम सकल अनात्मप्रपञ्चकी अवरणीयताका अचञ्चल निश्चय) – इन बारह योगोंका आश्रय लेकर ध्यानयोगका अभ्यास करे। जो उत्तम ज्ञान प्राप्त करना चाहता हो, उसे बुद्धिके द्वारा मन और वाणीको जीतना चाहिये तथा जो अपने लिये शान्ति चाहे, उसे ज्ञानद्वारा बुद्धिको परमात्मामें नियन्त्रित करना चाहिये।।"

१०२.

द्रव्यत्यागे तु कर्माणि भोगत्यागे व्रतान्यपि।
सुखत्यागे तपो योगं सर्वत्यागे समापना।।
(महाभारत-शान्तिपर्व २१९. १८)

"अविद्या – काम – कर्म तथा भोग्यवस्तुरूप द्रव्य और तज्जन्य सुख जीवके बन्धनमें हेतु हैं। शास्त्रोंमें द्रव्यका त्याग करनेके लिए यज्ञादि कर्म, भोगका त्याग करनेके लिए व्रत, विषयोपभोगसुलभ सुखका त्याग करनेके लिए तप और सर्वदुःखमूल अविद्या – काम तथा कर्मका त्याग करनेके लिए अष्टाङ्गयोग, भक्तियोग तथा ज्ञानयोगका उपदेश दिया गया है। यही त्यागकी चरम अवधि है ।।"

१०३.

ध्यातव्यं मनसा हृद्यं कल्याणं संविजानता।
यदा यदा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः।
तदा तस्य प्रसिध्यन्ति सर्वार्था नात्र संशयः।।
(महाभारत – शान्तिपर्व २२६.७)

"मन – ही – मन हृदयस्थित परमात्माका चिन्तन करना चाहिये। पुरुष जब – जब कल्याणरूप सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वरके चिन्तनमें चित्त रमाता है, तब – तब उसके सर्व मनोरथ सिद्ध होते हैं, इसमें संशय नहीं है।। "

१०४.

इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेन च।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते।।
(मनुस्मृति ६.६०)

"इन्द्रियोंके निरोधसे तथा राग एवं द्वेषके क्षयसे और प्राणियोंकी अहिंसासे मोक्षके लिये समर्थ होता है।।"

१०५.

इज्याचारो दमोऽहिंसा दानं स्वाध्यायकर्म च।
अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्।।
(याज्ञवल्क्यस्मृति १.५, बृहद्योगीयाज्ञवल्क्यस्मृति ११. ३४)

"यज्ञ, आचार, दम (मन और इन्द्रियोंका संयम), अहिंसा, दान और स्वाध्यायरूप कर्म – धर्म हैं; परन्तु योगसे आत्मदर्शन परम धर्म है।।"

१०६.

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपसमाश्रयम्।।
(श्रीमद्भागवत ११.३.२१)

"अत एव जो परम कल्याणका जिज्ञासु हो, उसे मोक्षोपलब्धिकी भावनासे गुरुदेवकी शरण लेनी चाहिये। गुरुदेव ब्रह्मात्मतत्त्वके प्रतिपादनमें निपुण तथा शङ्का – समाधानमें दक्ष,

शब्दब्रह्मात्मक वेदोंके पारदर्शी विद्वान् और परब्रह्ममें परिनिष्ठत तत्त्वज्ञ तथा प्रशान्त हों।।"

१०७.

आत्मा देशश्च कालश्चाप्युपायाः कृत्यमेव च।
सहायाः कारणं चैव षड्वर्गो नीतिजः स्मृतः।।
(महाभारत - शान्तिपर्व ५९.३२)

"आत्मा, देश, काल, उपाय, कृत्य तथा सहाय - नामक षड्वर्ग नीतिद्वारा सञ्चालित होनेपर उन्नतिके कारण होते हैं। अभिप्राय यह है कि देह, इन्द्रिय, प्राण ॐ १ौर अन्तःकरण तथा वासनाबीज अज्ञान-समवेत आत्मा , प्राची आदि दिक् , काशी आदि क्षेत्ररूप देश, भूत - भविष्यत् - वर्तमान तथा प्रातः - मध्याह्न - सायम् आदि काल, कार्यसाधक प्रकाररूप उपाय, देश - काल - पात्रानुरूप कार्यविशेषरूप कृत्य एवम् द्रव्य, आचार्य, मन्त्री, पत्नी, परिकरादि सहायकका उपयोग, प्रयोग, विनियोग कर्मसिद्धिके षड्वर्ग हैं।"

१०८.

परोरजः सवितुर्जातवेदो
देवस्य भर्गो मनसेदं जजान।

सुरेतसादः पुनराविश्य चष्टे
हंसं गृध्राणं नृषद्रिङ्गिरामिमः।।
(श्रीमद्भागवत ५.७.१४)

"सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् कर्मफलदायक स्वप्रकाश सर्वेश्वर सूर्यका तेज प्रकृतिसे परे है। उसीने सङ्कल्पद्वारा इस सृष्टिकी संरचना की है। वही अन्तर्यामीरूपसे इसमें प्रविष्ट होकर अपनी चित् - शक्तिद्वारा सर्वविध प्राणियोंकी रक्षा करता है। हम उस बुद्धिप्रवर्तक तेजकी शरण हैं।।"

धर्मकी ..... जय हो ।
अधर्मका .....नाश हो ।
प्राणियोंमें... सद्भावना हो ।
विश्वका ....कल्याण हो ।
गोमाताकी ...जय हो ।
गोहत्या ..... बन्द हो ।
भारत ....अखण्ड हो ।
हर - हर महादेव ।

जयघोष

धर्मस्य हि जयो भूयादधर्मस्य पराजयः।
भूयात्प्राणिषु सद्भावो विश्वस्यास्य शिवं सदा।।

गवां वै मन्त्रमूर्त्तीनां पुनर्भूयाज्जयो जयः।
कलङ्को गोवधोद्भूतः प्रभो राष्ट्रादपैतु नः।।

भूयाद्भारतमस्माकमखण्डं धर्ममण्डितम्।
स्वामिनां करपात्राणां वर्द्धतां धर्मसंहतिः।।

शम्भो हर - हरेत्युच्चैर्महादेवेति गर्जनम्।
सद्धर्मवर्त्मपान्थानामस्माकं राजतां भुवि।।

शुभं भूयाद्धि विश्वस्य प्राणिनः सन्तु निर्भयाः।
धर्मवन्तश्च मोदन्तां ब्रह्मज्योतिः समेधताम्।।

धर्मकी जय हो। अधर्मका नाश हो। प्राणियोंमें सद्भावना हो। विश्वका कल्याण हो।। मन्त्रमूर्त्ति गौवोंकी पुनः जय हो , जय हो। हे प्रभो! गोवधसे

उद्भूत कलङ्क हमारे राष्ट्रसे दूर हो।। हमारा भारत अखण्ड और धर्ममण्डित हो। श्रीकरपात्रस्वामीद्वारा संस्थापित धर्मसङ्घ वृद्धिको प्राप्त हो।।

'शम्भो ! हर – हर! महादेव!' – यह उच्च स्वरसे किया गया उद्घोष हम सद्धर्ममार्गपर चलनेवाले पथिकोंके भूमण्डलमें उल्लसित हो।। विश्वका कल्याण हो। सद्भावसम्पन्न सब प्राणी निर्भय हों। धर्मात्मा प्रमुदित हों। वेद और ब्राह्मणोंका तेज उद्दीप्त हो तथा ज्योतिस्स्वरूप ब्रह्म वेदज्ञ मनीषियोंके हृदयमें स्फुरित हो।।

प्रातः ६, मध्याह्न १०, अपराह्न २, सायं ६ एवम् रात्रि १०बजे सर्वहितकी भावनासे निम्नलिखित प्रार्थना प्रत्येक सत्रमें पाँच - पाँच बार व्यक्तिगतरूपसे तथा आध्यात्मिक संस्थानोंके माध्यमसे आस्था तथा उत्साहपूर्वक नित्य कर्त्तव्य है। छान्दोग्योपनिषत् २.१४.१ तथा महाभारत-शान्तिपर्व ३३७.३०के अनुसार प्रतिदिन पाँच बार भगवद्भजनसे सर्वार्थसिद्धि सुनिश्चित है।-

प्रार्थना

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदताम्
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी।।

(श्रीमद्भागवत ५. १८.९)

"हे प्रभो ! विश्वका कल्याण हो, दुष्ट दुष्टतासे विनिर्मुक्त होकर प्रमुदित हो ! सब एक - दूसरेका हित चिन्तन करें। हमारा मन शुभमार्गमें प्रवृत्त हो तथा हमारी बुद्धि निष्कामभावसे आप स्वप्रकाश सदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीहरिमें निमग्न हो।।"

श्रीहरिः

श्रीगणेशाय नमः

अनुरोध

प्रिय पाठकवृन्द! सस्नेह अभिनन्दन।

श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरी - उड्यानपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु -शङ्कराचार्य स्वामी निश्चलानन्दसरस्वती महाभागद्वारा संस्थापित 'स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान' से प्रकाशित धर्म, अध्यात्म, संस्कृति, आयुर्वेद, गणित तथा राष्ट्रविषयक सुदुर्लभ शताधिक ग्रन्थोंका अनुशीलनकर सुसंस्कृत, सुशिक्षित, सुरक्षित, सम्पन्न, सेवापरायण और स्वस्थ व्यक्ति तथा समाजकी संरचनामें ; तद्वत् स्वयंके सर्वविध उत्कर्षमें जीवनका उपयोग और विनियोग करते हुए सुयोग्य पाठकों और संस्थानों तक संस्थानकी पुस्तकोंको पहुँचानेका प्रमोदपूर्ण प्रयास अवश्य करें।

भवदीय

श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्यके निज सचिव

स्वामी निर्विकल्पानन्दसरस्वती

श्रीहरिः

श्रीगणेशाय नमः

पूर्वाम्नाय श्रीगोवर्द्धनमठ -स्वस्तिप्रकाशनसंस्थानसे प्रकाशित पुस्तकें

१.शुकसुधा

२.श्वेताश्वतरोपनिषत् अध्याय १-३ (व्याख्यासहित)

३.श्वेताश्वतरोपनिषत् अध्याय ३-६ (व्याख्यासहित)

४.नासदीयसूक्तम् (सायणभाष्यानुवादसहित)

५.कुन्तीस्तुतिः (विस्तृत व्याख्यासहित)

६ श्रीराधारस और रसिकशेखर

७ श्रीराधारससुधा और श्रीकृष्णरसवैभव

८.पीठपरिषद् और उसके अन्तर्गत आदित्यवाहिनी और आनन्दवाहिनी

९. सुखमयजीवनका सनातनसिद्धान्त

१०.विश्वशान्तिका सनातनसिद्धान्त

११:स्वस्तिकगणित

१२.सार्वभौमसनातनसिद्धान्त

१३.सारार्थदीपिका

१४.शारीरकस्वाराज्यसिद्धिसारसमाख्या

१५.सनातनधर्मियोंका रसरहस्यमय बहुदेवादिवाद
१६.जीवनज्योति
१७.उल्लास – हास
१८.गीताजयन्ती और भीष्मोत्क्रान्ति
१९.अनमोलवचन
२०.नीति और अध्यात्म
२१.नीतिसूक्तम्
२२.आयुर्विज्ञान
२३.अध्यात्मरहस्य
२४.श्रीमद्भगवद्गीतामें योगचतुष्टय
२५.सनातनसन्देश
२६.व्रतस्वरूपविमर्श
२७.बालजागरण
२८.श्रीमद्भगवद्गीतामें कर्मतत्त्व
२९.श्रीमद्भगवद्गीतामें पुरुषार्थ चतुष्टय
३०.पूर्वाम्नाय –पुरीपीठ – परिचय – प्रकल्प
३१.श्रीजगन्नाथ और उनकी रथयात्रा
३२.व्यूहरचना
३३.अङ्कपदीयम्
३४.गणितदर्शन

३५.पावनसन्देश
३६.दिग्दर्शन
३७.राष्ट्ररक्षा
३८.परमार्थसार
३९.ब्रह्मज्ञानावलीमाला
४०.करुणा, कठोरता और कर्त्तव्यनिष्ठा
41. The Eternal Principles Of Happy Life
४२.श्रीमद्भगवद्गीतामें ज्ञानतत्त्व
४३.क्रान्तिबिन्दु
४४.दिव्यानुभूति (प्रथम भाग)
४५.अवतारमीमांसा
४६.विचित्र सम्वाद
४७.वैदिकार्षगणित
४८.प्रवचनपीयूष
४९.बौद्धागमवृत्तान्त तथा निगमागमसिद्धान्त
५०.नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम्
५१.गणितचिन्तामणि
५२.चतुराम्नाय – चतुष्पीठ
53.The Philosophy of Mathematics
54.Swastik - Ganita

55. Nature of Numbers

56..Bhagawan Shree Krisna

५७.श्रीगीतासुधा

५८.श्रीराधासुधा

५९.जगदीश्वर, जीव और जगत्

६०.भागवतसुधा

६१.श्रीजगन्नाथाष्टकम्

६२.श्रीसागर – गङ्गा – आरती

६३.ऋग्वेदीय पूर्वाम्नाय – गोवर्द्धनमठ – पुरीपीठ

६४. भगवान् श्रीकृष्ण (हिन्दी अनुवाद)

६५. वैदिकार्षप्रक्रियाप्रकाश

६६. शून्यैकसिद्धि और द्व्यङ्कपद्धति

६७. सनातनधर्म

68. Sanatan - Dharma

69. Ganita Chintamani

७०. पूर्वाम्नाय – पुरीपीठ – परिचय– प्रदीप

७१. उद्बोधन

७२. सनातनधर्म – प्रश्नोत्तर – मालिका

७३. भावनोपनिषत् (भाष्यानुवादसहित)

७४. श्रीदक्षिणामूर्त्यष्टकम् (भाष्यानुवादसहित)

७५. योगमीमांसा (सूत्रानुवाद तथा व्याख्यासहित)

76.. Bhagawan Shree Ram

७७. शून्यैकसिद्धि और द्व्यङ्कपद्धति (अङ्ग्रेजी अनुवाद)

७८. द्व्यङ्कपद्धतिकी वैदिकार्षविधा

७९. चित्रालोक

८०. बौद्धसिद्धान्त और वेदान्त

८१. भारत – वैभव

८२. वेदान्तरससार – सर्वसिद्धान्तसमन्वयप्रकार

८३.सनातनसिद्धान्त

८४.द्व्यङ्कादिपद्धतिकी वैदिकविधि

८५.श्रीशिवावतार–भगवत्पाद–आदिशङ्कराचार्य

८६.हस्तामलकस्तोत्रम्

८७.तोटकस्तुतिः

८८.मूकाम्बिकास्तुतिः

८९.श्रीहरिशङ्करस्तुतिः

९०.स्वरूपसिद्धिः

९१.गणितसूत्रम्

९२.राष्ट्रोत्कर्ष–अभियान

९३.राजधर्म

९४.सूत्रगणितम्

०९५.सनातनसन्देश
०९६.गुरुवंश–मठाम्नाय–दिग्दर्शन–सेतु–महानुशासनम्
०९७.धर्मेश्वरसंहिता
०९८.चतुर्व्यूह–परिशीलन
०९९.सनातनवर्णव्यवस्थाकी उपयोगिता
१००.दिव्यानुभूति – जीवनज्योति . द्वितीयभाग
१०१. गीताजयन्ती
१०२.महाकुम्भकी दिशा और दशा
१०३.पूज्य श्रीधर्मसम्राट् के महत्त्वपूर्ण उपदेश
१०४.गीतामान
१०५.त्रिपथगा
१०६.प्रणवप्रकल्प
१०७.प्रचारप्रकल्प
१०८.ज्योतिष – दर्शन
१०९.नीतिनिधि
११०.उद्गम
१११.अकारो वै सर्वा वाक्
११२.गीताका सार्वभौम सिद्धान्त
११३.'विचारपीयूष' – सारार्थदिग्दर्शन
११४.शुभसन्देश
११५.श्रीमद्भगवद्गीताकी अद्भुत शैली

११६.गर्वसे कहें – 'हम हिन्दु हैं'
११७.आक्षेपपरिहार–तथ्यप्रकाश
११८.महाभारत – परिशीलन (महाभारतके ऐतिह्य तथ्यका नीति तथा अध्यात्मगर्भित तात्पर्य)
११९.नीतिसावित्री
१२०.अवतारहस्य
१२१.विकाश– विमर्श
१२२.वेद – विमर्श
१२३.वेदान्त – विज्ञान
१२४. पत्रकारिताकी स्वस्थविधा
१२५.श्रीशङ्कराचार्य–जीवनचरित
१२६.अधिकारमीमांसा
१२७.सेव्य – सेवक – सेवा – स्वरूपविमर्श
१२८. नास्तिक भी आस्तिक
१२९.प्राथमिक – वैदिकार्ष – गणित
१३०.प्राथमिक – वैदिकार्षगणित – सूत्रार्थसंहिता
१३१.माध्यमिक – वैदिकार्ष – गणित
१३२.पूर्वाम्नाय – वैदिकार्ष – गणित
१३३. दुर्गास्तोत्रम्
१३४.गीतासारार्थः
१३५.नीतिचालीसा
१३६.श्रीहरिहरस्तोत्रम्

श्रीशङ्कराचार्य-गोवर्द्धनमठ - पुरी-पीठ